# भाग - 2

## अध्यात्म, विज्ञान एवं प्रतीक

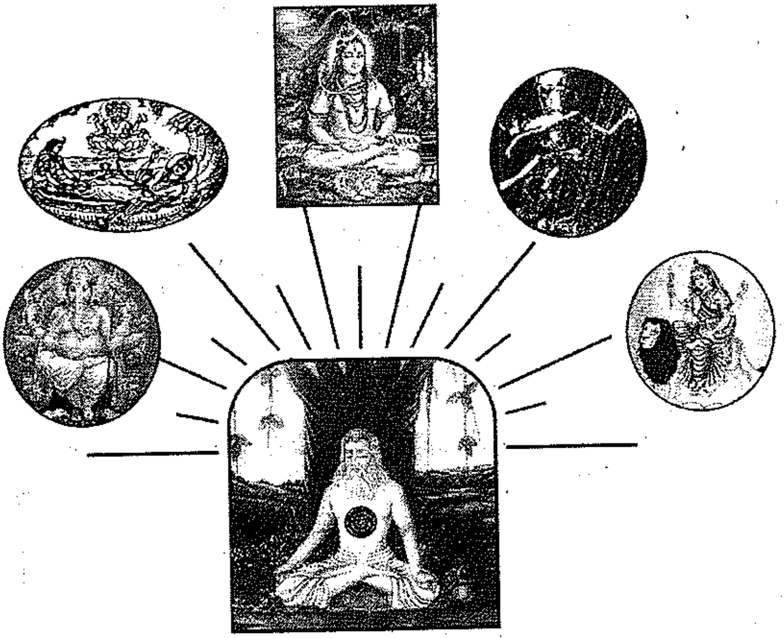

विश्व प्रसिद्ध विज्ञान की पुस्तक **'THE TAO OF PHYSICS'** के विद्वान लेखक डॉ. फ्रिटजोफ कापरा द्वारा प्रतीकों के सम्बन्ध में लिखित कुछ विचारों का भावार्थ :-

*योगीजन चित्त की एकाग्र अवस्था मे जिस सत्य का साक्षात्कार करते हैं, उसे समुचित रूप से शब्दों में व्यक्त करना लगभग असम्भव होता है। यही हाल भौतिकविदों (Physicists) का भी है। आधुनिक विज्ञान, विशेषकर 'क्वॉन्टम-फील्ड' (Quantum Field) के सिद्धान्त को कुछ मॉडलों (Models) द्वारा व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया है, परन्तु वह व्याख्या पूर्ण नहीं है। इसे भारतीय ऋषियों ने देव प्रतीकों के माध्यम से बखूबी व्यक्त करने का सफल प्रयास किया है और यह विधा सर्वोत्तम है। माननीय आनन्द कुमारस्वामी के शब्दों में यह विधा समाधि में अनुभव किये गये सत्यों के निकटतम है। उदाहरणस्वरूप भगवान शंकर का नृत्य एवं 'क्वॉन्टम-फील्ड' सिद्धान्त मानव की अन्तः प्रेरणा (Intuition) के परिणाम हैं तथा समान भाव को व्यक्त करते हैं।*

*(इस विषय की विस्तृत जानकारी हेतु* ***पञ्चम सत्र में*** *(A) अनुच्छेद 12 एवं 13 (B) पृष्ठ 155-156 के Foot Notes क्रमशः 'b' तथा 'a' (C)* चित्र संख्या - 5.08 और **सप्तम सत्र में** पृष्ठ 220 का *Foot Note 'b' देखें)*

P.T.O.

*Excerpts from pages 51, 52 & 56 of Tao of Physics (3rd Edition) - by Dr. Fritjof Capra.*

*Indian mysticism and Hinduism in particular, clothes its statements in the form of myths using metaphors and symbols, poetic images, similies and allegories. Mythical language is much less restricted by logic and common sense. It is full of magic and paradoxical situations, rich in suggestive images and never precise, and can thus convey the way in which mystics experience reality much better than factual language. According to Ananda Coomaraswamy, myth embodies the nearest approach to absolute truth that can be stated in words.*

*The rich Indian imagination has created a vast number of gods goddesses, whose incarnations and exploits are the subject of fantastic tales, collected in epics of huge dimensions. The Hindu with deep insight knows that all these gods are creations of the mind, mythical images representing the many faces of reality. On the other hand, he or she also knows that they were not merely created to make the stories more attractive, but are essential vehicles to convey the doctrines of a philosophy rooted in mystical experience.*

*Whenever the Eastern mystics express their knowledge in words - be it with the help of myths, symbols, poetic images or paradoxical statements - they are well aware of the limitations imposed by language and linear thinking.* ***Modern physics has come to take exactly the same attitude with regard to its verbal models and theories.*** *They too are only approximate and necessarily inaccurate. They are the counterparts of the eastern myths, symbols and poetic images and it is at this level that I shall draw the parallels. The same idea about matter is conveyed for example, to the Hindu by the cosmic dance of the god Shiva as to the physicist by certain aspects of quantum field theory.* ***Both the dancing god and the physical theory are creations of the mind : models to describe their author's intuition of reality.***

*Eastern mysticism has developed several different ways of dealing with the paradoxical aspects of reality,* ***whereas they are bypassed in Hinduism through the use of mythical language.*** *Buddhism and Taoism tend to emphasize the paradoxes rather than conceal them....*

卐 ॐ 卐

## - प्रथम सत्र -

# मानव धर्म की विशेषताएँ एवम् पुनर्स्थापना

मानव धर्म कल भी था, आज भी है और कल भी रहेगा। प्राकृतिक सिद्धान्तों पर आधारित होने के कारण यह सनातन एवम् शाश्वत है। परन्तु समय के परिवर्तन के साथ-साथ विभिन्न कारणों से समाज में मत-भिन्नता व्याप्त होने लगती है, ***फलस्वरूप जन साधारण में विभ्रम फैल जाता है।*** अतएव समय के द्वारा डाली हुई धूल-मिट्टी अर्थात् विभ्रम को दूर करने के लिए परमात्मा अपनी शक्तियों को कई रूपों में पृथ्वी पर भेजता रहता है, जिससे समाज को सही दिशा का ज्ञान मिलता रहे। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मोहम्मद आदि-शंकराचार्य, कबीर, नानक, दयानन्द सरस्वती एवम् विवेकानन्द का पृथ्वी पर आविर्भाव मानव-धर्म के सिद्धान्तों पर जमी मैल (अन्धविश्वास एवम् कुरीतियाँ) को साफ करने हेतु ही हुआ था।

ऐसा प्रतीत होता है, कि भारतीय ऋषियों ने खोज के प्रारम्भिक काल में आधुनिक वैज्ञानिकों की भाँति ही पदार्थ विज्ञान (Material Sciences) की सभी शाखा-प्रशाखाओं, जैसे - भौतिकी (Physics), रसायन शास्त्र (Chemistry), नभो-भौतिकी (Astro Physics), जीव विज्ञान (Biology), शरीर-विज्ञान (Anatomy), शरीर क्रिया विज्ञान (Physiology) आदि की खोज की होगी। विज्ञान की इन शाखा-प्रशाखाओं के ज्ञान से सम्भव है, कि उस काल के समाज में भी दैहिक सुखों की तृप्ति की ही माँग रही हो, परन्तु इन सुखों के उपभोग के परिणाम-स्वरूप जब समाज अत्यधिक अशान्ति से भर गया होगा, तब उन्हें अर्थ प्रवण समाज (Money Oriented Society) के स्थान पर मोक्ष प्रवण समाज (Moksh Oriented Society) रचना को प्राथमिकता देने का निर्णय करना पड़ा हो। फलस्वरूप उन्होंने सृष्टि-रचना, पालन एवम् संहार के सिद्धान्तों, सम्बन्धित चेतन शक्तियों, देव आकृतियों, कथाओं नाना प्रकार की पूजा विधिओं, उपासना-पद्धतियों एवम् योग-विद्याओं की खोज की और ***उस ज्ञान को पदार्थ विज्ञान (Material Sciences) के तथ्यों के आधार पर प्रतीकों की भाषा में लिखा। यद्यपि आज साहित्य सम्मेलनों, काव्य गोष्ठियों एवम् कला दीर्घाओं में यह गूँज तो यदा-कदा सुनायी दे जाती है, कि अधिकांश भारतीय वाङ्मय का लेखन प्रतीकों की भाषा में हुआ है, तथापि प्रतीक-रचना पर कोई आधिकारिक ग्रंथ उपलब्ध न होने के कारण समाज में प्रतीक सृजन प्रक्रिया की अवधारणा स्पष्ट नहीं है।*** अतः विषय की गम्भीरता को ध्यान में रखते हुए इस पुस्तक में प्रतीकों के सम्बन्ध में अधिक सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने का प्रयास किया गया है।

**प्रतीकों की सृजन प्रक्रिया :-** जिस प्रकार किसी राष्ट्र का ध्वज उसके राष्ट्रीय भाव का

द्योतक (प्रतीक) माना जाता है, उसी प्रकार व्यक्ति, पदार्थ अथवा सूक्ष्म देव शक्ति की मूल 'प्रवृत्ति' के आधार पर प्रतीकों (स्वरूपों) का सृजन किया गया है। सृष्टि में अनन्त प्राणी हैं और ईश्वर ने उनकी प्रवृत्तियाँ भी अनेक प्रकार की बनायी है, जैसे—कोई सात्विक है तो कोई दुराचारी, किसी को समाज, देश व राष्ट्र की सेवा में रुचि है तो कोई राष्ट्र, समाज अथवा देश के साथ छल करने में तत्पर रहता है। कोई शरीर से बलवान है तो कोई विद्वान; कोई धर्मोपदेशक, है तो कोई राज्य-सत्ता का लोलुप। किसी को टमाटर प्रिय है तो किसी को बैंगन, कोई दूध पीकर प्रसन्न होता है, तो कोई शराब में डूबा रहता है।

इसी प्रकार कोई वस्तु कड़वी होती है तो कोई मीठी अथवा नमकीन या खट्टी, कोई लाल है तो कोई नीली, पीली अथवा हरी। कोई औषधि का कार्य करती है तो कोई विष का। घोड़ा तेज़ भागता है तो कुत्ता स्वामि-भक्त होता है। शेर अति हिंसक होता है, तो लोमड़ी चालाक।

**अव्यक्त चेतन शक्तियाँ :-** जैसे - ***'ब्रह्मा'*** की मूल प्रवृत्ति सृजनकारी है, तो ***'विष्णु'*** की पालनकारी एवम् कर्मफल प्रदाता की तथा ***'शिव'*** विध्वंस, पालन व सृजन सभी शक्तियों के शीर्षस्थ देवता हैं, मोक्षप्रदाता भी हैं। ***'इन्द्र'*** विलासिता में डूबे रहने वाली प्रवृत्ति के देवता हैं, परन्तु साथ में पृथ्वी पर सृजन, पालन एवम् विध्वंसकारी शक्तियों, जैसे - जल, वायु, अग्नि, सूर्य आदि के नियामक भी हैं। ***'दुर्गा' (दूर गामिनी) सम्पूर्ण सृष्टि की अम्बे माँ हैं।***

प्रवृत्ति का क्या भाव है, इस पर ऊपर कुछ उद्धरण दिए गये हैं। परमात्मा ने प्रवृत्तियों [a] के आधार पर नाम और रूप धारी मानवों समेत सम्पूर्ण प्राणी-जगत का सृजन किया है। ऋषियों ने ऐसी चौरासी लाख प्रवृत्तियों की गणना की है। उसी के आधार पर भारतीय शास्त्रों में जीवात्मा की चौरासी लाख योनियाँ [b] मानी गयी हैं। इसी प्रवृत्ति-मूलक प्रक्रिया को ध्यान में रखकर लगता है, कि भारतीय मनीषियों ने भी अदृश्य परमात्मा एवम् अन्यान्य सूक्ष्म देव शक्तियों के नाम व रूपों की रचना, पदार्थ विज्ञान की पृष्ठभूमि में मानवीकृत प्रतीकों के रूप में की है। उपर्युक्त कुछ उदाहरण व्यक्ति, पदार्थ एवम् सूक्ष्म देव शक्तियों की मूल प्रवृत्ति का ज्ञान तो देते हैं, परन्तु इन प्रवृत्तियों को प्रतीकों के रूप में ढालना एक विशिष्ट कला है, जिसे भारतीय मनीषियों ने बड़ी कुशलतापूर्वक किया है। प्रतीक के सृजन में उस व्यक्ति, वस्तु अथवा सूक्ष्म शक्ति से मिलती-जुलती अन्य वस्तु का चित्र, रेखाचित्र अथवा मूर्ति का निर्माण किया जाता है, ताकि उस समानान्तर चित्रांकन में उस व्यक्ति, वस्तु अथवा सूक्ष्म देव शक्ति की ***प्रवृत्ति (गुणों)*** का अधिक से अधिक समावेश किया जा सके। *उदाहरणार्थ* - किसी मानव का चित्र अथवा मूर्ति उस व्यक्ति के चेहरे से उत्सृजित मनोभावों को बहुत हद तक प्रकट करती है, यद्यपि वह चित्र/मूर्ति पूरी तरह से वह व्यक्ति स्वयम् नहीं है।

**(A) प्रतीकों के उदाहरण जो सूक्ष्म से विशाल के सृजन में सहायक हैं :-**

***(i)* भवन का नक्शा (Blue Print) :-** किसी भवन का नक्शा स्वयम् भवन तो नहीं

---

**a.** परमात्मा द्वारा प्रवृत्तियों के आधार पर सृष्टि के सृजन का वर्णन ***चतुर्थ सत्र*** में है।

**b.** मानव के पूरे जीवन में किए गये कर्मों का लेखा-जोखा उसके अवचेतन मन में रिकार्ड होता रहता है तथा मृत्यु के समय इस पूरी फाइल का एक संक्षिप्त प्रारूप प्रवृत्ति (Tendency) के रूप में बनता है तथा इस प्रवृत्ति से उस मानव की भावी योनि का निर्धारण जिस प्रकार होता है, इस सबका विस्तृत वर्णन ***द्वितीय सत्र*** में किया गया है।

है, परन्तु भविष्य में बनने वाले भव्य भवन का प्रारूप (प्रतीक) तो है ही।

*(ii)* **वीडियो फिल्म :-** यह किसी पूरी फिल्म के सम्वाद, गायन एवम् नृत्य आदि का संक्षिप्त प्रारूप (प्रतीक) ही है, जिसे पर्दे पर पुनः बड़ा करके देखा जा सकता है।

*(iii)* **सांकेतिक चिह्न :**—सांकेतिक चिह्नों a, b, c, d, e, f आदि द्वारा भाषा का निर्माण किया गया, जिससे मानव मन में उठने वाले अनेक अमूर्त विचारों को व्यक्त करना सुगम हुआ है तथा विज्ञान में विशेषकर रसायन शास्त्र (Chemistry) एवम् गणित (Mathematics) में a, b, c, x, y, z, $\alpha, \beta, \gamma$ आदि चिह्नों द्वारा अनेक गूढ़ समस्याओं को हल कर सकना सम्भव हुआ है।

**(B) अन्य प्रतीकों के उदाहरण जो विशाल से सूक्ष्म में परिवर्तित होते हैं :-**

*(i)* **आकाशगंगा** [a] :- आकाशगंगा से निरन्तर प्राण ऊर्जा (एलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन एवम् न्यूट्रॉन आदि आवेशित कणों) की जीवनदायिनी वर्षा [b] होती रहती है, जो पृथ्वी पर सतत् (भगीरथ) नदी जैसी धारा के रूप में गिरती रहती है। श्वेत तारों की एक लम्बी नदी जैसी आकाशगंगा को अमावस्या की रात में साफ-साफ देखा जा सकता है। अरबों सूर्यों की शक्ति से पूरित

**गंगावतरण का प्रतीकात्मक स्वरूप**

**चित्र 1.01**

**गंगावतरण का सम्भावित वैज्ञानिक स्वरूप (आवेशित कणों की वर्षा)**

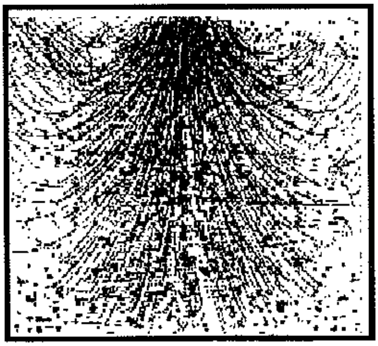

**चित्र 1.02**

---

**a.** सन्दर्भ : ***"संक्षिप्त शिव पुराण" गीता प्रेस गोरखपुर तेरहवाँ संस्करण वि. स. 2057 पृष्ठ 100-101*** "वे जो सदाशिव हैं, उन्हें परमपुरुष, ईश्वर, शिव, शम्भु और महेश्वर कहते हैं। ***वे अपने मस्तक पर 'आकाशगंगा' को धारण करते हैं।"***..."उन कालरूपी ब्रह्म ने एक ही समय शक्ति के नाथ "शिव लोक' नामक क्षेत्र का निर्माण किया था। इस उत्तम क्षेत्र को ही काशी कहते हैं" वह परम निर्वाण मोक्ष का स्थान है, जो सबसे ऊपर विराजमान है।

**b.** When these highly energetic 'Cosmic rays' hit the atmosphere of the earth, they collide with the nuclei of the atmosphere's air molecules and produce a great variety of secondary particles, which either decay or undergo further collisions, thus creating more particles, which collide and decay again, and so on, until the last of them reach the Earth. In this way, a single proton plunging into the Earth's atmosphere

***Continued next page as $b_1$***

श्वेतरूपिणी आकाशगंगा[a] का समानान्तर प्रतीक पौराणिकों द्वारा जीवनदायिनी देव नदी गंगा को चुना गया तत्पश्चात् गंगावतरण की प्रतीकात्मक कथा का सृजन किया गया।

**'गो'–पृथ्वी का प्रतीक**

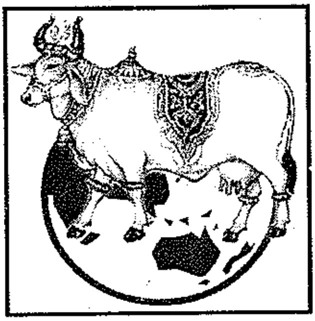

चित्र 1.03

***(ii)* गो (गाय)** [b] :- पृथ्वी माता अन्न, फल-फूल एवम् भाँति-भाँति के भोग्य पदार्थों को उत्पन्न करके सभी प्राणियों का भरण-पोषण करती है। 'गो' (गाय) भी इसी के समानान्तर अपने दूध से, बछड़ों से तथा गोबर व मूत्र से धान्य एवम् औषधि व खाद का उत्पादन करके सभी मानवों का पोषण करती है, अतएव पौराणिकों ने 'गो' को मातृभूमि (पृथ्वी) का प्रतीक चुना। श्रीरामचरितमानस [c] में इस प्रतीक के सम्बन्ध में स्पष्ट संकेत मिलता है -

***चौ० :-*** *धेनु रूप धरि हृदय विचारी।*
*गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी।।*

अर्थ :-(रावण के आतंक से घबड़ा कर) पृथ्वी हृदय में विचार कर देवताओं एवम् मुनियों की शरण में ***गो (धेनु)*** का रूप धारण करके (अपनी व्यथा कथा सुनाने के लिए) गयी।

**हमारी आकाशगंगा तथा परमाणु रचना में समानान्तरता :**—परमाणु की नाभि के चारों ओर एलेक्ट्रॉन्स द्रुत गति से परिक्रमा करते रहते हैं, उसी प्रकार आकाश गंगा के बाह्य घेरों में स्थित एक खरब से भी अधिक सूर्य केन्द्रीय मण्डल के चारों ओर निरन्तर परिक्रमा करते हैं। इस ऋण (-) विद्युत आवेशित एन्टी क्लॉकवाइज (anticlockwise) गति से गतिशील एलेक्ट्रॉन तारा मण्डल में चेतन बल ब्रह्मा अव्यक्त रूप से कार्यरत रहकर सृजन का कार्य करते हैं। पौराणिकों द्वारा इस एलेक्ट्रॉन तारामण्डल को ब्रह्मलोक की संज्ञा दी गयी लगती है। जिस प्रकार परमाणु रचना में न्यूट्रॉन कण तथा प्रोटॉन कण नाभि के भीतर स्थित रहते हैं, तथा इनका आवेश क्रमशः सम (±) तथा धन (+) होता है, उसी प्रकार आकाश गंगा का केन्द्रीय स्तम्भ

---

**$b_1$** can give rise to a whole cascade of events in which its ***original kinetic energy is transformed into a shower of various particles*** and is gradually absorbed as they penetrate the air undergoing multiple collisions. The same phenomenon that can be observed in the collision experiments of high-energy physics thus occurs naturally, but more intensely all the time in the Earth's atmosphere ; ***a continual flow of energy going through a great variety of particle patterns in a rhythmic dance of creation and destruction.*** A magnificient picture of this energy dance, which was taken by accident, when an unexpected cosmic ray shower hit a bubble chamber at the European Research Centre (CERN) during an experiment Tao of Physics P. 261-262 3rd Edition Publishers M/s Flamingo (Refer fig no. 1.02).

**a & b** इस सम्बन्ध में गंगा-आकाशगंगा का प्रतीक एवं गो—मातृभूमि (पृथ्वी) का प्रतीक नामक विस्तृत लेख पुस्तक के भाग-3 में देखें।

**c** *श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड दो. 183-184 के मध्य*

सम (±) आवेशित श्वेत रंग के न्यूटॉन तारा समूह से निर्मित है। इसे प्राचीन भाषा में शिवलोक कहा गया लगता है तथा इस स्तम्भ से संलग्न प्रोटॉन तारा मण्डल अति तप्त तारों से निर्मित है। इनका रंग नीला है। इसे बैकुण्ठ लोक माना गया है। यह तारामण्डल धन (+) विद्युत से आवेशित है तथा इस तारा मण्डल में समाहित रहकर विष्णु चेतन बल अव्यक्त रूप से सृष्टि के पालन का कार्य करते हैं एवम् वे कर्मफल प्रदाता भी हैं। उपरोक्त समानान्तरता का विश्लेषण **"यथापिण्डे तथा ब्रह्माण्डे"**[a] सिद्धान्त के आधार पर किया गया है। इसी प्रकार मानव तथा आकाशगंगा की रचना एवम् उनके व्यवहार में भी समानान्तरता है, जिसका विस्तृत वर्णन ***द्वितीय सत्र***, में है। (हमारी आकाशगंगा का चित्र इसी सत्र के संख्या 1.06 पर तथा परमाणु संरचना का चित्र द्वितीय सत्र के संख्या 2.10 पर देखें)

सृजन एवम् पालन की क्रिया सतत् चलने के साथ-साथ सम (±) आवेशित न्यूट्रीनों (Neutrino) कणों में समाहित भगवान रुद्र अव्यक्त रहकर तीनों लोकों के विध्वंस का कार्य सृष्टि के आदि काल से सतत् करते आ रहे हैं। पौराणिकों ने इन्हें महाकाल के नाम से भी पुकारा है।

प्रतीकों की रचना क्रम में अव्यक्त चेतनबलों, जैसे - ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दुर्गा, इन्द्र आदि को मानवीकृत प्रतीकों के रूप में कल्पित किया गया तथा उनका चित्रांकन, उनकी कार्यशैली (प्रवृत्ति) के आधार पर किया गया। क्योंकि ये सारी सूक्ष्म देव शक्तियाँ मानव की इन्द्रियों द्वारा देखी अथवा अनुभव की जानी सम्भव नहीं हैं, अतः उपनिषदों की गूढ़ भाषा जन-साधारण को समझने/समझाने हेतु इनका मानवीकृत प्रतीकों में पौराणिकों द्वारा रूपान्तरण किया गया [b]तथा इतिहास ग्रंथों एवम् पुराणों के माध्यम से सरलीकरण किया गया। यह प्रयास अत्यन्त सार्थक रहा। ***कालान्तर में जनसाधारण ने श्रद्धावश इन कथाओं के शाब्दिक अर्थों को ही सत्य की भाँति स्वीकार कर लिया, जबकि एक अल्पसंख्यक समाज ने, जिसकी पैठ विद्यालयों एवम् महाविद्यालयों तक थी, इस साहित्य को असंगत एवम् तर्कहीन माना।*** उस काल तक आधुनिक विज्ञान की यह समझ, कि सम्पूर्ण सृष्टि चुम्बकीय विद्युत तरंगों के एक विशिष्ट रूप (Pattern) के घनीकरण से बनती है, विकसित नहीं हो पायी थी, अतएव क्वॉन्टम भौतिकी (Quantum Physics) द्वारा प्रदत्त इस ज्ञान के अभाव में ***उस वर्ग ने प्रतीकों में लिखित साहित्य का पुरजोर विरोध किया, इससे पूरे समाज में दोनों ओर से अन्तर्विरोध एवम् भ्रम फैल गया।***

भारतीय मनीषियों ने मानवीकृत प्रतीकों को आधार बनाकर सम्पूर्ण अध्यात्म का लेखन किया है। अध्यात्म के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों, जैसे - ज्योतिष, वास्तु आदि शास्त्रों में भी प्रतीकों

---

**a** इस सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या द्वितीय सत्र के चित्र संख्या 2.03, 2.09, 2.10 एवम् 2.11 के द्वारा की गयी है।

**b** संदर्भ :- श्रीमद्भागवत महापुराण, प्रथम खण्ड, पन्द्रहवाँ संस्करण, गीता प्रेस गोरखपुर, वि.स. 2047
व्यास उवाच :- ***महाभारत इतिहास रचना के बहाने मैंने वेद के अर्थ को खोल दिया है,*** अर्थात् सरल कर दिया है, जिससे सभी स्त्री, शूद्र, आदि अपने-अपने धर्म का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। (P. 62)
सूत उवाच :- इतिहास और पुराणों को पाँचवाँ वेद कहा जाता है। (P. 61)

का प्रचुरता से प्रयोग किया गया है। 'रेकी' विज्ञान में भी प्रतीकों का प्रयोग प्रचलित है। चूँकि प्रतीक विज्ञान पर कोई प्रामाणिक ग्रंथ उपलब्ध नहीं है तथा जनसाधारण पर सदियों पुराने संस्कारों का प्रभाव है, अतएव इस पुस्तक में दिए गये देव प्रतीकों के वैज्ञानिक अर्थों को वर्तमान समाज द्वारा स्वीकार किया जाना कठिन लगता है। लेकिन विज्ञान की पीढ़ी इन अर्थों को स्वीकार करेगी, ऐसी आशा है। अस्तु !

स्वभावतः मानव को अपने जैसे अथवा अपने आस-पास रह रहे उपयोगी जीव ही प्रिय लगते हैं, अतः निराकार देव प्रतीकों की रचना में मानवीकृत स्वरूपों का ही चयन विशेष रूप से किया गया है। क्योंकि प्रतीकों की रचना का आधार सम्पूर्ण रूप से प्रवृत्तिमूलक है, अतः देव प्रतीकों के वाहनों हेतु भी आवश्यकतानुसार उनकी प्रवृत्ति के अनुरूप पशुओं, पक्षियों अथवा अन्य जीवों का चयन किया गया। उदाहरणार्थ - श्री विष्णु जी के वाहन गरुड़, ब्रह्मा जी के वाहन हंस, शिव जी के वाहन वृष, तो श्री गणेश जी के लिए चूहे को चुना गया। भारतीय वाङ्मय में सैकड़ों प्रतीकों का उल्लेख पाया जाता है, परन्तु विभिन्न विद्वान उन प्रतीकों के भिन्न-भिन्न प्रकार से अर्थ बतलाते हैं, अतएव पञ्चम सत्र में कुछ मुख्य-मुख्य देव प्रतीकों के विश्लेषण वैज्ञानिक आधार पर विस्तार से एवम् इस सत्र में संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

(iii) **ब्रह्मा** :– एलेक्ट्रॉन तारामण्डल (समस्त सूर्य समूह) सृजनकारी अव्यक्त चेतन बल को धारण [a] करते हैं। यह तारामण्डल ऋण (-) विद्युत से आवेशित है तथा इस तारामण्डल में व्याप्त सृजनकारी बल के मानवीकृत स्वरूप ब्रह्मा हैं।

(iv) **विष्णु** :–प्रोटॉन तारा मण्डल (वैकुण्ठ लोक) पालनकारी अव्यक्त चेतन बल को धारण [a] करते है। यह तारामण्डल धन (+) विद्युत से आवेशित है तथा इस तारामण्डल में व्याप्त पालनकारी एवम् कर्मफल प्रदाता चेतन बल के मानवीकृत स्वरूप विष्णु हैं।

(v) **शिव** :–न्यूट्रॉन तारा समूह (शिवलोक) मोक्ष प्रदाता अव्यक्त चेतन बल को धारण [a] करते हैं। इस तारामण्डल में सम (±) आवेश है तथा इस तारामण्डल में व्याप्त चेतन बल के मानवीकृत स्वरूप शिव हैं।

(vi) **रुद्र** :–तीनों लोकों में व्याप्त मात्राहीन (massless) सम (±) आवेशित न्यूट्रीनो एवम् एन्टीन्यूट्रीनो कण समूह भगवान शिव के अंश से उत्पन्न चेतन बल गतिशील एवम् विघटनकारी रुद्र के बल को धारण [a] करते हैं। इस चेतन बल के मानवीकृत स्वरूप रुद्र हैं [b]।

---

a. जिस प्रकार शास्त्रों में मानव शरीर को आत्मा का रथ (वाहन) तथा आत्मा को रथी (स्वामी) बतलाया गया है, उसी प्रकार आकाश गंगा में स्थित विभिन्न तारामण्डलों को अव्यक्त देव बलों के वाहक समझना उचित होगा। "आत्मानं रथिनं विद्धि, शरीरं रथमेव तु"—कठोपनिषद् 1/3/3

b भगवान रुद्र की उत्पत्ति का विश्लेषण इसी सत्र के अनुच्छेद 2(V) में वैज्ञानिक ढंग से "परमात्मा का स्वरूप (विश्व चादर)" शीर्षक के अन्तर्गत विस्तार से दिया गया है।
संक्षिप्त वैज्ञानिक विश्लेषण = $n \rightarrow p + e^- + \bar{\nu}$
न्यूट्रॉन → प्रोटॉन + एलेक्ट्रॉन+ एन्टीन्यूट्रीनो

*(vii)* **दुर्गा :-** आकाशगंगाओं की भीषण गति से उत्पन्न गतिज ऊर्जा (Kinetic Energy) दुर्गा (दूर-दूर तक गमन करने वाली) हैं। दुर्गा तीनों प्रकार की शक्तियों - सरस्वती, लक्ष्मी तथा काली को अपने में समाहित किए हुए हैं। तीनों शक्तियों का संयुक्त मानवीकृत स्वरूप दुर्गा हैं।

(viii) **श्रीराम :–** सूर्यों से निःसृत फोटॉन कण प्रकाश रूप अव्यक्त चेतन महाबल श्रीराम को धारण करते हैं। सर्वशक्तिमान श्रीराम अनन्त प्रकाश बल अर्थात् ज्ञानबल के मानवीकृत स्वरूप हैं।

(ix) **श्रीकृष्ण :–** विश्व में व्याप्त कृष्ण बल (Dark Matter), आकर्षण रूप अव्यक्त चेतन महाबल श्रीकृष्ण को धारण करता है। सर्वशक्तिमान श्रीकृष्ण असीम आकर्षण बल अर्थात् प्रेम के मानवीकृत स्वरूप हैं।

**1. प्रतीकों से विभ्रम :-** रसायन शास्त्र में पोटेशियम तत्त्व के लिए सांकेतिक चिह्न 'K' निश्चित किया गया है, परन्तु 'K' पोटेशियम नहीं है। इसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, महेश, दुर्गा आदि सूक्ष्म देव प्रतीकों को समाज ने अति श्रद्धावश वास्तविक स्वरूप मान लिया। ***वस्तुतः प्रतीकों की षोडष पूजा एवम् ध्यान द्वारा इन प्रतीकों की पृष्ठभूमि में निहित सर्वशक्तिमत्ता, सर्वव्यापकता एवम् सर्वज्ञानमयता आदि गुणों का विकास करके साधक को अद्वैत[a] भाव तक पहुँच कर विराट में लीन होना लक्ष्य था, जो ज्ञान कालान्तर में समाज से लुप्त हो गया तथा उपरोक्त विश्लेषणों के अभाव में अनेक प्रकार के अंधविश्वास पनपने लगे, जिससे भूतकाल में समाज को अपूरणनीय क्षति उठानी पड़ी।***

**2. वर्ण व्यवस्था से विभ्रम :-** कुछ धार्मिक कृत्यों में ब्राह्मण भोजन की प्रथा है अर्थात् उस वर्ग के सम्पूर्ण पोषण करने का विधान है, जो समाज का अध्यात्म के क्षेत्र में दिशा-निर्देश करता हो। परन्तु नगरों में ढूँढ़ने पर भी ब्राह्मण नहीं मिलते। पुजारी तक भी कठिनाई से मिल पाते हैं, तब इस मान्यता के आधार पर, कि ब्राह्मण का बेटा ब्राह्मण है, भले ही वह ब्राह्मण रंग-रोगन का कार्य ही करता हो अथवा चौकीदारी करता हो, उसे भोजन करवा दिया जाता है और ब्राह्मण भोज की औपचारिकता पूरी कर ली जाती हैं। यद्यपि शास्त्रीय मत है, कि ***जन्म से नहीं अपितु कर्म तथा प्रवृत्ति से वर्ण की मान्यता होनी चाहिए***[b], तथापि आज समाज में जन्म के आधार पर ही वर्ण की मान्यता प्रचलित है। भगवान बुद्ध के समय में भी वर्ण की मान्यता जन्म के आधार पर थी। उन्होंने इसको अमान्य करके कर्म से 'वर्ण' के विचार की पुनर्स्थापना की। तब देश में बौद्ध धर्म की प्रधानता हो गयी।

**3. 'गो सेवा' से विभ्रम :-** मानव शरीर को चार भागों में - **(a)** मस्तिष्क **(b)** भुजाएं **(c)** उदर एवम् **(d)** पैर, मानकर समाज की तुलना की गयी है। मस्तिष्क को ***'ब्राह्मण'*** अर्थात्

---

**a** अद्वैत भाव का अर्थ है, कि मानव की अन्तर-आत्मा तथा परमात्मा दोनों समान तत्त्व हैं।

**b** *चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। (गीता-4/13)*
अर्थ :- भगवान कृष्ण कहते हैं, हे अर्जुन ! ***चारों वर्णों - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवम् शूद्रों की रचना मेरे द्वारा उनके गुणों (प्रवृत्ति) तथा कर्मों के आधार पर की गयी है।***

*'शिक्षक'*, भुजाओं को *'क्षत्रिय'* अर्थात् *'रक्षक'*, उदर को *'वैश्य'* अर्थात् *'पोषक'* तथा पैरों को *'शूद्र'* अर्थात् *'सेवक'* कहा गया है। यदि मानव-शरीर के पैरों को यथेष्ट पोषण नहीं मिलेगा, तो मानव पंगु हो जायेगा, परिणामतः वह अपना जीवन निर्वाह सुचारु रूप से नहीं कर सकेगा तथा जीवन रक्षा भी सम्भव नहीं हो सकेगी ? अतएव सेवकों को यथेष्ट पोषण अर्थात् उनकी आवश्यकतानुसार रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा एवम् सम्मान देना शेष समाज, विशेषकर पोषक (व्यापारी) वर्ग का कर्त्तव्य है। जिस प्रकार सूर्य अपना प्रकाश तथा ऊर्जा बाँटते समय किसी के साथ भेदभाव नहीं करता, पेट भोजन को पचाकर सारे शरीर को आवश्यकतानुसार बाँट देता है एवम् हम अपने पैरों के साथ पूरी तरह से आत्मीयता का भाव रखते हैं। (उदाहरणार्थ यदि पैर में साधारण सा काँटा भी चुभ जाये, तो आँखें और हाथ तथा मन और बुद्धि तब तक चैन नहीं लेते जब तक कि काँटा निकल नहीं जाता) उसी प्रकार समाज का कर्त्तव्य है, कि सेवक वर्ग के साथ पूरे सौहार्द व प्रेम का व्यवहार रखते हुए उनका भरण-पोषण करे। इसी को ''गोसेवा'' की संज्ञा दी गयी है। ***अतएव इस विषय की गम्भीरता को ध्यान में रखते हुए भारतीय मनीषियों ने हर गृहस्थी के लिए सांकेतिक रूप से स्वभोजन से पूर्व प्रथम रोटी 'गो' को खिलाने का विधान बनाया था, जिसकी परम्परा आज भी चल रही है, परन्तु आज हम इस सांकेतिक भाषा का अर्थ भूल गये हैं।***

जिस प्रकार यदि भोजन पेट में छत्तीस घंटे से अधिक समय तक संचित रह जाता है, तो वह शरीर के लिए कष्टकारक हो जाता है, और डायबिटीज़, रक्तचाप, हृदयाघात आदि जैसे अनेक रोगों को जन्म देता है, उसी प्रकार यदि सम्पदा अथवा बल एक स्थान पर संचित हो जाता है, तो समाज में अस्थिरता आने लगती है। परिणामस्वरूप चोरी, लूटपाट एवम् हत्याओं की घटनाएँ होने लगती हैं। दुराचारी एवम् व्यभिचारी सन्तान के कारण आपसी झगड़े एवम् पारिवारिक विघटन भी होने लगते हैं, जैसा कि आज पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित समाज में हो रहा है। अतएव समाज के प्रत्येक वर्ग, विशेषकर सम्पन्न वर्ग के हित में है, कि वह आवश्यकता से अधिक संचय न करे तथा अपनी सम्पदा को सभी के साथ मिल बाँट कर उपभोग करे।

यज्ञोपवीत (जनेऊ) के दूसरे धागे द्वारा भी ऋषियों ने हमें यही शिक्षा दी है, जिसे देव (समाज) ऋण अथवा यज्ञ की संज्ञा भी दी गयी है। भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं, कि *'ब्रह्मा'* ने सृष्टि के आदि में प्रजा की रचना करके कहा, कि तुम लोग *'यज्ञ'* के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होओ। *'यज्ञ'* द्वारा देवताओं (समाज) को उन्नत करो। वे देवता तुम लोगों को उन्नत करें। इस प्रकार परस्पर निःस्वार्थ भाव से एक-दूसरे को उन्नत करते हुए तुम लोग परम *कल्याण (मोक्ष)* को प्राप्त होओगे। जो पुरुष ऐसा नहीं करता, ***वह निश्चय ही चोर है तथा वह पापी पुरुष जो मात्र अपने लिए ही जीता है, उसका जीवन व्यर्थ है" ।***

---

a *सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः । अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ।। (गीता-3/10)*
अर्थ :- प्रजापति ब्रह्मा ने कल्प के आदि में यज्ञ (निष्काम कर्म) सहित प्रजाओं को रचकर उनसे कहा, कि तुम लोग इस यज्ञ के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होओ और यह यज्ञ तुम लोगों को इच्छित भोग प्रदान करने वाला हो।
*contd. next page as* $a_1$

उपरोक्त *'देव यज्ञ'* (गो सेवा) न करने के कारण भूतकाल में कमजोर वर्ग के अधिकांश लोग दूसरे तथा-कथित धर्मों में चले गये हैं तथा आज भी वे लोग वैदिक धर्मावलम्बियों की इस कमजोरी का लाभ उठाने में प्रयासरत हैं।

**सम्पूर्णता की सोच :-** आज विश्व में धर्म के क्षेत्र में सम्पूर्णता की सोच की कमी के कारण अनेक मत-मतान्तरों का उदय हो गया है तथा कुविश्वासों पर आधारित समझ वाले लोगों के कारण निरन्तर हिंसा एवम् रक्तपात किया जा रहा है।

**विज्ञान द्वारा समाधान :-** आज पदार्थ विज्ञान एवम् तकनीकी विकास के कारण विश्वमानव का बौद्धिक स्तर निरन्तर ऊँचा होता जा रहा है। ***सभी क्षेत्रों में फैले विभ्रमों एवम् अंधश्रद्धा से उत्पन्न कुरीतियों को दूर करने का आज विज्ञान ही उपाय है।*** सृष्टि रचना से लेकर मानव जीवन तक के वैज्ञानिक विश्लेषण के प्रचार-प्रसार से विश्व शान्ति की स्थापना की आशा की जा सकती है, अतएव निम्न पंक्तियों में विशाल मानव धर्म की नौ खण्डों में आधुनिक विज्ञान के आधार पर संक्षिप्त व्याख्या करने का प्रयास किया गया है। इस व्याख्या की पहली कड़ी है - 'वैदिक धर्म की विशेषतायें'।

**1. वैदिक धर्म की विशेषताएं** [b] **:-** वैदिक धर्म का ज्ञान समग्रता पूर्ण है तथा इसका विशाल ज्ञान तीन क्षेत्रों में विस्तृत है।

***(i)* आध्यात्मिक :-** अध्यात्म सम्बन्धी साहित्य में आत्मा-परमात्मा के बारे में जानकारी है जो वेदों, ब्राह्मण तथा दर्शन-ग्रंथों, उपनिषदों ब्रह्मसूत्र एवम् श्रीमद्भगवद् गीता जैसे महान ग्रंथों में उपलब्ध है।

***(ii)* आधिदैविक :-** इस साहित्य में प्राकृतिक शक्तियों के मानवीकृत प्रतीकों पर शिक्षाप्रद कथाएं आरोपित की गयी हैं। यह विस्तृत मनोरंजक ज्ञान पुराणों में उपलब्ध है।

***(iii)* आधिभौतिक :-** पदार्थ विज्ञान (Material Sciences), अर्थात् भौतिक-शास्त्र (Physics), नभो-भौतिकी (Astro Physics), रसायन-शास्त्र (Chemistry), प्राणी-विज्ञान

---

**a₁** *देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः। परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।।(गीता-3/11)*
अर्थ :- तुम लोग इस यज्ञ के द्वारा देवताओं (समाज) को उन्नत करो और वे देवता (समाज) तुम लोगों को उन्नत करें। इस प्रकार निःस्वार्थ भाव से एक-दूसरे को उन्नत करते हुए तुम लोग परम कल्याण (मोक्ष) को प्राप्त होओगे।
*इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः। तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः।। (गीता-3/12)*
अर्थ :- यज्ञ (निष्काम सेवा) के द्वारा उन्नत हुए देवता (प्रकृति की सूक्ष्म शक्तियाँ) तुम लोगों को बिना माँगे निश्चय ही इच्छित भोग प्रदान करते रहेंगे। इस प्रकार उन देवताओं के द्वारा दिए हुए भोगों को, **जो पुरुष उनको (देवताओं को) बिना दिए स्वयम् भोगता है, वह चोर ही है।**
*यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः। भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।। (गीता-3/13)*
अर्थ :- यज्ञ (समाज सेवा) से बचे हुए अन्न (धन, सम्पत्ति, अन्नादि) को भोग करने वाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापों से मुक्त हो जाते हैं और जो पापी लोग अपना शरीर पोषण के लिए ही पकाते हैं अर्थात् स्व-भोग हेतु जो धन, सम्पत्ति, अन्नादि का उपभोग करते हैं, वे तो मानो पाप को ही खाते हैं अर्थात् ऐसा कृत्य पापपूर्ण है।

**b** इस संबंध में पुस्तक के भाग 3 में एक लेख "वैदिक ज्ञान के तीन स्वरूप" पठनीय है।

(Biology), शरीर विज्ञान (Anatomy), शरीर-क्रिया-विज्ञान (Physiology) इत्यादि पर आधारित तर्क से युक्त जानकारी को कहा गया है।

मानव समाज की मनः स्थिति को मुख्य रूप से दो भागों में बाँटा जा सकता है - (*a*) **भावना प्रधान व्यक्ति** - जो सामान्यतया साहित्य और कला के विद्यार्थी होते हैं। (*b*) **बुद्धि प्रधान व्यक्ति** - जो विज्ञान के विद्यार्थी होते हैं, वे हर बात का, क्या, क्यों और कैसे जानना चाहते हैं। ***सामान्यतया वे किसी भी बात को बिना विश्लेषण के मात्र आस्था और विश्वास के आधार पर मानने से इन्कार करते हैं। आज का युग बहुत कुछ इसी दिशा में बढ़ रहा है।***

***स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, कि "वे ऐसे किसी धर्म को नहीं मानते, जिसे तर्क की कसौटी पर कसा न जा सके।" गीता एवम् रामचरित मानस में भगवान श्रीकृष्ण ने एवम् भगवान श्रीराम ने भी वैज्ञानिक को सर्वश्रेष्ठ अर्थात् ज्ञानी से भी श्रेष्ठ बतलाया है, क्योंकि वैज्ञानिक हर बात का प्रमाण देता है। इस राह पर चलने वाले अंधविश्वासों और कुविश्वासों के कारण अपना तथा विश्व समाज का अनहित नहीं करते। वैदिक धर्म अथवा 'सनातन धर्म' ही ऐसा धर्म है, जिसमें आस्था-विश्वास वाला मार्ग एवम् बुद्धिवादी मार्ग दोनों को ही मान्यता प्राप्त है तथा बुद्धिमार्ग को सर्वश्रेष्ठ घोषित भी किया गया है।***

### *2. ईश्वर की अवधारणा*

***2(i)* ईश्वर का अस्तित्व :-** ईश्वर है अथवा नहीं है, यह एक ऐसा 'यक्ष'-प्रश्न है, जिस पर मानव समाज पीढ़ियों-दर-पीढ़ियों से वाद-विवाद करता आया है और यह विवाद आज भी उसी प्रकार से चल रहा है। भारत में अनेक धर्म प्रचारक हुए और उनमें से अनेक ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते थे और कई नहीं भी करते थे। बौद्ध व जैन धर्म में ईश्वर की सत्ता की कोई स्पष्ट अवधारणा नहीं है। इनके द्वारा प्रकृति के सिद्धान्तों को तो स्वीकार किया गया है, परन्तु इन नियमों के बनाने वाले और उन नियमों के अनुसार प्रकृति पर शासन करने वाले ईश्वर की अवधारणा पर ये लगभग मौन हैं। षट्दर्शन भारतीय वाङ्मय के अनमोल शास्त्र हैं। इनमें से तीन ऋषि ईश्वर की सत्ता को नहीं मानते। ***वस्तुतः परमात्मा 'अस्तित्व' मात्र है।*** उसके होने ***(अस्तित्व)*** मात्र से सृष्टि के सारे कार्य - सृजन एवम् पालन परमात्मा की अर्धांगिनी (प्रकृति) विशिष्ट नियमों के आधार पर अनवरत रूप से करती रहती है तथा विशिष्ट कालावधि के पश्चात् भगवान रुद्र प्रकृति का विध्वंस कर देते हैं।

***2(ii)* ईश्वर के अस्तित्व की पुष्टि :-** मानव बुद्धि को गम्भीरता से सोचने के लिए जो बात विवश करती है, वह यह है, कि सम्पूर्ण विश्व में अरबों आकाशगंगाएं अर्थात् अरबों ब्रह्माण्ड हैं। वे सभी के सभी लगभग 20,000 मील प्रति सेकंड की गति से दौड़ रहे हैं। पूरी सृष्टि में सब ओर गति ही गति है। अणु, परमाणु, कण, पृथ्वियाँ, ग्रह, तारे, नक्षत्र सब कुछ किसी विशिष्ट योजना के अन्तर्गत किसी अव्यक्त शक्ति की प्रेरणा से एक विशिष्ट गति से दौड़ते हुए

अपना निर्धारित कार्य पूरा कर रहे हैं। आश्चर्य तो यह है, कि प्रत्येक आकाशीय पिण्ड, जैसे - ग्रहों, क्षुद्र-ग्रहों, सूर्यों, चन्द्रमाओं, तारों, सितारों, धूमकेतुओं, नक्षत्रों एवम् आकाशगंगाओं, सभी की गति निश्चित है, इन सबकी संख्या भी अनन्त है परन्तु पूरी सृष्टि में न कहीं कोई अव्यवस्था होती है और न ही कोई टक्कर अथवा समय से पूर्व न कोई विनाश ही होता है। आकाशगंगाएं बनती हैं और उनका विघटन हो जाता है। ग्रह, तारे, सितारे, अणु, परमाणु, कण सभी कुछ का सृजन और विघटन एक अनवरत खेल चलता रहता है। क्वैन्टम-भौतिकी विज्ञान [a] बहुत कुछ उन्हीं परिणामों की पुष्टि करता जा रहा है, जो भारतीय अन्वेषकों ने पूर्वकाल में खोज रखे हैं। भारतीय मनीषियों के अनुसार हमारी आकाशगंगा का जीवनकाल इकत्तीस नील, दस खरब, चालीस अरब ($31,10,40 \times 10^9$) सौर वर्ष है। यह जीवन चक्र सतत पुनः पुनः प्रवाहित होता रहता है। हर आकाशगंगा का अपना-अपना जीवनकाल है, अतएव इतनी बुद्धि कौशल से युक्त कोई परमात्म-शक्ति [b] अवश्य है, जो अनन्त शक्ति से सम्पन्न है और अव्यक्त रहकर इतने महान खेल के सारे कार्यों का संचालन करती है। लगता है, कि इसी आश्चर्य के वशीभूत होकर संसार में लगभग सभी वर्ग के मानव, ईश्वर की सत्ता पर विश्वास करते हैं। भारतीयों द्वारा की गयी खोज के पीछे भी यही सबसे बड़ा तर्क है, जिसको भारतीय ऋषियों ने अनेक प्रकार से वर्णन किया है। कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं।

***2(iii)* शास्त्रों का मत** :- गीता में कहा गया है, कि अव्यक्त ब्रह्म के बारे में न तो यह कहा जा सकता है, ***कि 'वह है' और न यह भी कहा जा सकता है कि वह 'नहीं है'*** [c]***,*** *क्योंकि उस 'ब्रह्म' के होने का कोई स्पष्ट इन्द्रियगम्य प्रमाण नहीं मिलता, इसलिए उसके होने की निश्चितता नहीं है, परन्तु वह ब्रह्मदेव (परमात्मा) सब जगह अनन्त हाथों और पैरों वाले, नेत्रों, सिरों व मुखों, कानों वाले होकर संसार भर में व्याप्त हैं। वे इन्द्रियों से रहित होते हुए*

---

**a** Thus the void of the Eastern mystics can easily be compared to the quantum field of sub-atomic physics. Like the quantum field, it gives birth to an infinite variety of forms, which it sustains and eventually reabsorbs. As Chhandogya Upnishad says –

*Tranquil let one worship it.* ***सर्वं खल्विदं ब्रह्म, तज्जलानिति शान्त उपासीत।***
*As that from which he came forth.* ***अथ खलु ऋतुमयः पुरुषो यथा क्रतुरस्मिँल्लोके।***
*As that into which he will be dissolved.* ***पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति प्रेत्य भवति।***
*As that in which he breathes.* ***स क्रतुं कुर्वीत।*** *(छान्दोग्योपनिषद्-3/14/1)*

*(Page 234-235 Tao of Physics, 3rd Edition, Publishers M/s. Flamingo)*

**b** Einstein spent the last years of his life searching for such a unified field. The ***'Brahman'*** of the Hindus .........., can be seen, perhaps, as the ultimate unified field from which spring not only the phenomena studied in physics, but all other phenomena as well.

*(Page-234 Tao of Physics, 3rd Edition, Publishers M/s. Flamingo)*

**c** ***ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते। अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते।।*** *(गीता-13/12)*
अर्थ :- जो जानने योग्य है तथा जिसको जानकर मनुष्य परमानन्द को प्राप्त होता है, उसको भली भाँति कहूँगा। ***वह अनादि परब्रह्म न सत् ही कहा जाता है, न असत् ही। अर्थात् परमात्मा का अस्तित्व निश्चित नहीं है।***

*भी सभी इन्द्रियों के विषयों के भोक्ता हैं, आदि आदि*[a] ।

गोस्वामी तुलसीदास जी भी रामचरितमानस में यही कहते हैं, कि उस ब्रह्म का आज तक किसी ने भी आदि और अन्त नहीं पाया है, ***परन्तु वेद ने अनुमान से यह गाया है, कि :-***

***चौ० :- आदि अन्त कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा।।***
***बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ विधि नाना।।***
***आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी।।***
***तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा।।***
***अस सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहि बरनी***[b] ।।

**अर्थ :-** उस ब्रह्म का आज तक किसी को भी आदि और अन्त नहीं मिला है, ***परन्तु वेद ने अनुमान से यह गाया है,*** कि वह ब्रह्म बिना पैर के चलता है, बिना कानों के सुनता है तथा बिना हाथों के अनेक कार्यों को करता है। वह बिना मुँह के तमाम तरह के रसों का स्वाद लेता है तथा बिना जीभ के योग्य वक्ता भी है। बिना शरीर के वह स्पर्श कर सकता है तथा बिना आँखों के देख भी सकता है। बिना नाक के वह सूँघता है। उस ब्रह्म के सारे कार्य विचित्र हैं, उसकी महिमा का वर्णन करना अत्यन्त कठिन है।

**परमात्मा की सर्वव्यापकता**

**चित्र 1.04**

ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है :-

***ईशा वास्यमिदम् सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्***[c] ।

अर्थात् अखिल विश्व में जो कुछ भी चराचर (गतिमान तथा स्थिर) जगत देखने-सुनने में आता है, वह सब उस परमात्मा से ओत-प्रोत है। इस जगत का कोई भी अंश उनसे रहित नहीं है।

अलबर्ट आइंस्टीन से सत्ताइस वर्ष की उम्र में पूछा गया, कि क्या परमात्मा है, तो उत्तर था, कि 'परमात्मा' की आवश्यकता तो मालूम नहीं पड़ती, ***क्योंकि जीवन के सारे कार्य प्रकृति***

---

a ***सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्। सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।।*** *(गीता-13/13)*
अर्थ :- वह (परमात्मा) सब ओर हाथ-पैर वाला, सब ओर नेत्र, सिर और मुख वाला तथा सब ओर कान वाला है, क्योंकि वह संसार में सबको व्याप्त करके स्थित है।
***सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्। असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च।।*** *(गीता-13/14)*
अर्थ :- वह सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों को जानने वाला है, परन्तु वास्तव में सब इन्द्रियों से रहित है तथा आसक्तिरहित होने पर भी सबका धारण-पोषण करने वाला और निर्गुण होने पर भी गुणों को भोगने वाला है।
***बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च। सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्।।*** *(गीता-13/15)*
अर्थ :- वह चराचर जगत के सब भूतों के बाहर-भीतर परिपूर्ण है और चर-अचर भी वही है और वह सूक्ष्म होने से अविज्ञेय तथा अति समीप और दूर में भी वही स्थित है।

b *श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड दो. 117-118 के मध्य*

c *ईशावास्योपनिषद् 1.1*

***अकेले ही सुचारु रूप से चलाती रहती है।*** परन्तु यही प्रश्न जब उसकी मृत्यु के समय पूछा गया, तो उत्तर था, ***"परमात्मा है। यदि वह न होता, तो मैं मर न रहा होता। क्योंकि परमात्मा मृत्यु दण्ड द्वारा सृष्टि का नियमन जो करता है।"*** ***वस्तुतः सृष्टि रचना के पश्चात् बारम्बार मृत्यु का घटित होना ईश्वरीय सत्ता के अस्तित्व का स्पष्ट प्रमाण है।*** *एक बात और कि पूरी सृष्टि में मानव श्रेष्ठतम प्राणी है, क्योंकि परमात्मा ने उसे श्रेष्ठ बुद्धि प्रदान की है, जिससे वह बड़े से बड़े कार्य करता है। परन्तु श्रेष्ठतम बुद्धि कौशल, अथक परिश्रम एवम् सतत चिन्तन के पश्चात् भी अनेक बार कार्य में सफलता नहीं मिलती। इससे सिद्ध होता है, कि पर्दे के पीछे (अव्यक्त) कार्यरत कोई शक्तिस्रोत मानव से भी श्रेष्ठ अवश्य है, जो मानव जीवन तथा सम्पूर्ण सृष्टि का नियमन करता है, वही परमात्मा है।*

रामचरितमानस में भी कहा गया है, कि -

***दो० :-*** ***हानि लाभ, जीवन, मरण, यश, अपयश विधि हाथ*** [a]

**अर्थ :-** हानि-लाभ, जीवन-मरण एवम् यश-अपयश परमात्मा के आधीन हैं।

***2(iv)*** **परमात्मा का स्वरूप (महाकाल) :-** परमात्मा 'समय' (काल) के द्वारा किस प्रकार से सृष्टि का नियमन करता है, इस पर एक पौराणिक कथा निम्न प्रकार से है -

एक बार वशिष्ठ जी ने श्री लक्ष्मण जी को ***'समय'*** (काल) का महत्त्व समझाने हेतु कहा, कि हे लक्ष्मण ! मैं जब हुंकार दूँ, तब तुम बाण का संधान इस प्रकार करना, कि सामने खड़े चारों वृक्षों पर प्रहार हो जाये। इस पर लक्ष्मणजी ने वैसा ही किया, परन्तु बाण के लगने के प्रथम क्षण में जो वृक्ष वेधा गया, वह स्वर्ण का बन गया। दूसरे क्षण वाला वृक्ष चाँदी का तथा तीसरा और चौथा वृक्ष क्रमशः ताँबे और लोहे के बन गये। इस प्रकार वशिष्ठ जी ने लक्ष्मण को समझाया, कि बाण के प्रहार का प्रथम क्षण अति उत्तम ***'समय'*** (काल) था, जिसके कारण वह स्वर्ण का बना। शेष क्षण क्रमशः कम उत्तम थे और उसी का परिणाम था, कि वृक्षों की गुणवत्ता घटती गयी। अतएव जो परमात्मा सृष्टि का नियमन करता है, वह एक मूल्यवान ***'समय'*** भी है, जो मानव को सृष्टि के अच्छे-बुरे परिणाम, जीवन और मृत्यु, यश और अपयश प्रदान करता है, वह परमात्मा पर्दे के पीछे अव्यक्त रहकर ये सारे खेल करता है। कुछ अति- बुद्धिवादी भौतिक दृष्टि वाले लोग इस प्रकार की घटना को मात्र संयोग कह कर यह भूल जाते हैं, कि यह महान विश्व का बनाने वाला और नियमन करने वाला अनन्त शक्ति सम्पन्न परमात्मा है, जो कण-कण में व्याप्त रहकर अनेक चमत्कार पूर्ण घटनाओं का सृजन करता है। परन्तु हर घटना किसी विशिष्ट ***'नियम'*** के अन्तर्गत ही होती है। ***'नियम'*** से बाहर जाकर कुछ भी नहीं घटता। यह अलग बात है, कि हमारी तुच्छ बुद्धि उसको ठीक से समझ न पाए। उस नियम का नाम है ***'कर्म का सिद्धान्त'***, जिसकी विस्तृत चर्चा दूसरे सत्र में है।

***'काल' (मृत्यु)*** के देवता का नाम ***'यमराज'*** है, जो सभी प्राणियों की ***'मृत्यु'*** का नियमन करते हैं, परन्तु यमराज भी ***'कल्प'*** के अन्त में मृत्यु को प्राप्त हो जाते है, इसीलिए परमात्मा को काल से भी महान अर्थात् ***'महाकाल'*** की संज्ञा दी गयी है। 'रामचरित मानस' में गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं, कि परमात्मा (राम) के द्वारा भृकुटि (आँख की भौं) के हिलाने मात्र

---

**a** *श्रीरामचरितमानस अयोध्याकाण्ड दो. 171*

से सृष्टि का नाश हो जाता है - *"भृकुटि विलास सृष्टि लय होई"*[a]।

*2(v)* **परमात्मा का स्वरूप (विश्व चादर)** :- परमात्मा मानो पूरे विश्व में फैली हुई एक अव्यक्त ***विशालकाय चादर*** के समान है, जिसके तल पर ***'सत्'*** (गामा), ***'रज'*** (बीटा), ***'तम'*** (आल्फा) तरंगें, निरन्तर अठखेलियाँ कर रही होती हैं। विश्व पटल (Cosmic level) पर तरंगों के रूप में क्रियाशील सत, रज एवम् तम प्रकृति के तीन गुणों की अभिव्यक्ति विज्ञान की भाषा में निम्न प्रकार से मानी जा सकती है :-

सत = गामा तरंगों की पृष्ठभूमि में निहित सम (±) चार्ज।

रज = बीटा तरंगों की पृष्ठभूमि में निहित ऋण (–) चार्ज।

तम = आल्फा तरंगों की पृष्ठभूमि में निहित धन (+) चार्ज।

ये तरंगे परमात्मा के शरीर से उत्पन्न होकर सृष्टि के सृजन, पालन एवम् संहार का खेल निरन्तर चलाती रहती हैं, परन्तु इस सम्पूर्ण खेल में परमात्मा पूरी तरह से तटस्थ द्रष्टा बना रहता है अथवा विश्व सिनेमा के भीमकाय पर्दे पर ध्वनि एवम् प्रकाश तरंगों के द्वारा मानो निरन्तर एक फिल्म चल रही है। इस फिल्म में अनन्त-अनन्त जीवात्माएँ अभिनय कर रही हैं। ये जीवात्माएं [b] अभिनय के दौरान उत्पन्न मनोभावों को अर्थात् दुःख एवम् सुख का अनुभव भी करती हैं। बहुत थोड़ी सी जीवात्माएँ ही तटस्थ रहकर खेल का आनन्द ले पाती हैं, जबकि पर्दे पर होने वाले हत्या के खून के छींटे और होली के रंगों से श्वेत पर्दा पूरी तरह से निर्लेप रहता है, क्योंकि ***'वह'*** पर्दे के पीछे (अव्यक्त) रहकर सारे खेल का संचालन जो करता है। संलग्न चित्र में अव्यक्त परमात्मा रूपी विशालकाय विश्व पर्दे पर तीनों प्रकार की चुम्बकीय विद्युत तरंगों द्वारा अठखेलियाँ (क्रीड़ा) करते हुई एक वैज्ञानिक परिकल्पना को दर्शाने का प्रयास किया गया है। सम्पूर्ण प्रदार्थ जगत का सृजन एवम् पालन इन्हीं तीन तरंगों से होता है तथा सृष्टि के आदिकाल से ही रुद्र (न्यूट्रीनो कण) विघटन का कार्य समय-समय पर करते रहते हैं। प्रलय के समय किसी एक आकाशगंगा के लिए सृजन का कार्य ठहर जाता है तथा उस आकाशगंगा के चारों ओर अंधकार छा जाता है अर्थात् चुम्बकीय-क्षेत्र चरम स्थिति पर पहुँच जाता है और प्रकाश (विद्युत क्षेत्र) लुप्तप्राय हो जाता है और तब सम्पूर्ण प्रकृति विनाश को प्राप्त होकर पुनः गामा तरंगों में सिमट जाती है।

सृष्टि अर्थात् सृजन-प्रक्रिया का यह भाव विज्ञान के शब्दों में निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है [c]

$$n \longrightarrow p + e^{-} + \bar{\nu}$$

न्यूट्रॉन ⟶ प्रोटॉन+एलेक्ट्रॉन+एन्टी न्यूट्रीनो

} तीर (⟶) का निशान परिवर्तन को दर्शाता है। नाभि से बाहर न्यूट्रॉन कण का औसत जीवनकाल 1000 सेकण्ड है।

---

a *श्रीरामचरितमानस अरण्यकाण्ड दो. 27-28 के मध्य*

b परमात्मा, आत्मा एवम जीवात्मा के सम्बन्ध में, द्वितीय सत्र में विस्तार से दिया गया है।

c *Page-250 Tao of Physics, 3rd Edition, Publishers M/s. Flamingo*

## सृष्टि निर्माण, पालन एवम् संहार - एक वैज्ञानिक परिकल्पना

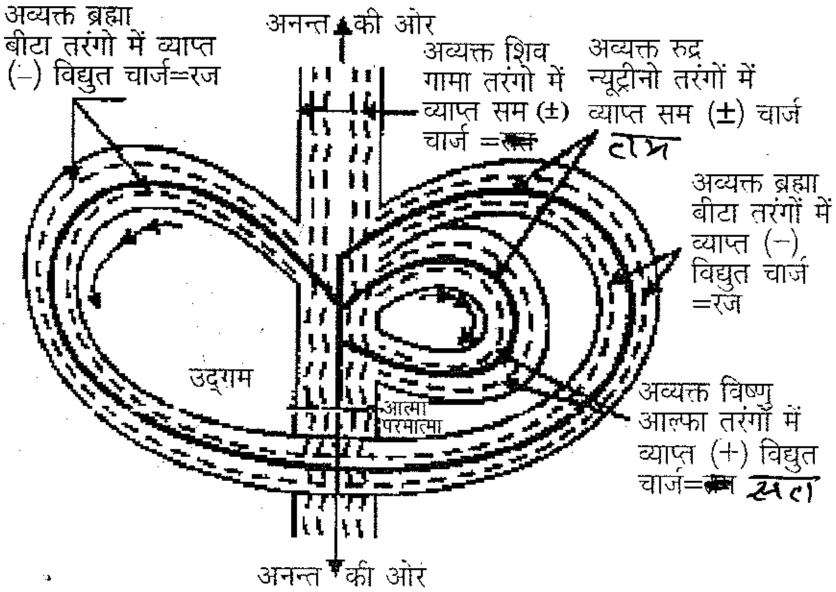


चित्र 1.05

***विज्ञान के अनुसार न्यूट्रॉन, प्रोटॉन एवम् एलेक्ट्रॉन कण तरंगों के रूप में भी व्यवहार करते हैं।*** भारतीय ऋषियों द्वारा उल्लिखित सत, रज एवम् तम गुणों वाली चेतन शक्तियाँ दृश्यमान जगत में $10^{14}$ से $10^{15}$ आवृत्तियों (frequencies) के मध्य प्रत्यक्ष रहती हैं। आधुनिक विज्ञान की भाषा में इन शक्तियों को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है -

| | | | |
|---|---|---|---|
| तम ~~सत~~ | = | न्यूट्रॉन | तारामण्डल में निहित सम (±) आवेश (charge) |
| रज | = | एलेक्ट्रॉन | तारामण्डल में निहित ऋण (–) आवेश (charge) |
| सत ~~तम~~ | = | प्रोटॉन | तारामण्डल में निहित धन (+) आवेश (charge) |

***इन्हीं कणों के संयोग से सम्पूर्ण पदार्थ जगत का निर्माण होता है।***

लगता है कि, 'शिव पुराण' में उपरोक्त प्रक्रिया को प्रतीकों की भाषा में निम्न प्रकार से कहा गया है :-

"सर्वप्रथम प्रधान तत्व (अव्याकृत प्रकृति) से रहित सूना अंधकारपूर्ण आकाश एवम् सद्ब्रह्म (परमात्मा) मात्र शेष थे। तत्पश्चात् परब्रह्म की इच्छा से सदाशिव ने अपने विग्रह से स्वरूपभूता 'शक्ति' की सृष्टि की[a] और सदाशिव के बाँयें भाग से विष्णु का प्राकट्य हुआ[b]। पुनः सदाशिव ने ब्रह्माजी को अपने दाहिने अंग से उत्पन्न किया[c] तथा महाप्रलयकारी विश्वात्मा रुद्र का प्रादुर्भाव सदाशिव के हृदय से हुआ[d]।

---

संदर्भ :- ***शिव पुराण (रुद्र संहिता), गीता प्रेस, गोरखपुर, तेरहवाँ संस्करण, वि0सं0 2057 के :-***
**a** पृष्ठ 99-100; **b** पृष्ठ 101-102; **c** पृष्ठ 103; **d** पृष्ठ 109

हमारी आकाशगंगा

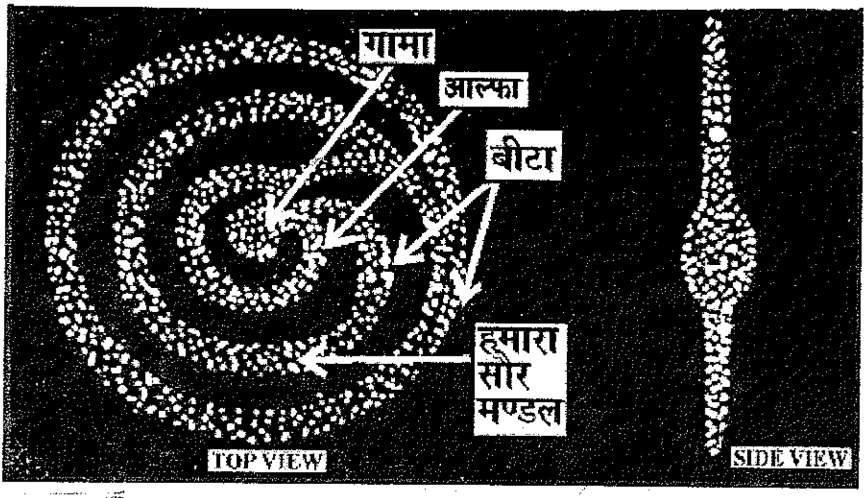


चित्र 1.06

*2(vi)* **हमारी आकाशगंगा** :- आकाशगंगा में स्थित न्यूट्रॉन तारों से बना केन्द्रीय स्तम्भ *'शिव-लोक'* है। प्रोटॉन तारों से बना परमेष्ठि मण्डल (केन्द्रीय स्तम्भ के निकट वाला प्रथम तारावृत्त) *'विष्णु-लोक'* है और इसके बाद के बाह्य तारावृत्त जहाँ पर एक खरब से भी अधिक सूर्य हैं, *'ब्रह्म-लोक'* है। रुद्र की स्थिति विष्णु-लोक, ब्रह्म-लोक एवम् शिवलोक तीनों में अन्तर्निहित रहती है। इन लोकों में रुद्र (न्यूट्रीनों कणों में अन्तर्निहित) अपना विनाश कार्य निरन्तर करते रहते हैं। इस प्रकार पौराणिक वर्णन विज्ञान की भाषा से पूरा मेल खाता है, जो उपरोक्त चित्र में दर्शाने का प्रयास किया गया है। इन तारावृत्तों की पृष्ठभूमि में जो अव्यक्त चेतन बल कार्यरत रहते हैं, उनको *'ब्रह्मा'*, *'विष्णु'* एवम् *'शिव'* माना गया है।

*2(vii)* **सर्वव्यापक परमात्म सत्ता** :- मान लीजिए कि सम्पूर्ण सृष्टि में प्रकृति ही अन्तिम सर्वोच्च सत्ता होती, तो प्रकृति का समय-समय पर जो विनाश होते देखा जाता है, वह न होता। ***कोई भी सत्ता अपना विनाश कभी भी नहीं चाहेगी, वह सदैव अपनी वृद्धि ही चाहेगी। प्रकृति का सृजन होता है, उसकी वृद्धि भी देखने में आती है और अन्त में उसका विनाश हो जाता है। वस्तुतः शक्ति के स्थायित्व के सिद्धान्त (Law of Conservation of Energy) के अनुसार शक्ति का कभी भी विनाश नहीं होता, बल्कि रूपान्तरण होता रहता है अर्थात् एक स्थान पर एक आकाशगंगा मृत होती है तथा अन्यत्र दूसरी का सृजन हो जाता है। यह चक्र अनवरत चलता रहता है। आशय यह हुआ, कि कोई अन्य सत्ता अवश्य है, जो यह कार्य प्रच्छन्न रूप से करती रहती है, परन्तु वह सत्ता इतनी सूक्ष्म है, कि उसको किसी प्रकार भी इन्द्रियों से देखा अथवा परखा नहीं जा सकता। इसीलिए हमारे ऋषियों ने निर्णय किया, कि वह सत्ता कण-कण में अवस्थित है। कणों तथा पदार्थों का निरन्तर शक्ति में तथा शक्ति का कणों एवम् ठोस पदार्थों के रूप में रूपान्तरित होते रहना ईश्वर के अस्तित्व का एक और स्पष्ट प्रमाण है।***

***2(viii)* परमात्म सत्ता के प्रकट रूप :-** भौतिक मापदण्ड से इस शक्ति (चुम्बकीय विद्युत तरंगों) के महासागर में दो गुण स्पष्ट रूप से दिखलायी पड़ते हैं :- ***(i)* प्रकाश *(ii)* आकर्षण**

***(i) प्रकाश : यह गुण कण-कण में अवस्थित है तथा किरलियन कैमरे से फोटो लेने पर किसी भी वस्तु के चारों ओर छिटकते प्रकाश (Aura) के रूप में दिखलायी पड़ता है।*** (किरलियन कैमरा एक प्रकार का ऐसा कैमरा है, जो किसी भी वस्तु अथवा प्राणी के शरीर से निःसृत ***'प्रभा-मण्डल'*** का फोटो ले सकता है। ***संलग्न चित्र*** में एक जीवित फल के चारों ओर प्रभामण्डल दर्शाया गया है।) जब तक इस फल की प्रभा (Aura) एक खास स्तर की रहती है, तब तक वह फल जीवित रहता है। प्रभामण्डल (Aura) के क्षीण होते ही, वह सड़ने लग जाता है। ठीक ऐसे ही मानव की अथवा किसी भी जीवित प्राणी की जीवन्तता अथवा मृत्यु, प्रभामण्डल की स्थिति अथवा इसके क्षीण होने पर निर्भर करती है।

**प्रभामंडल युक्त फल**

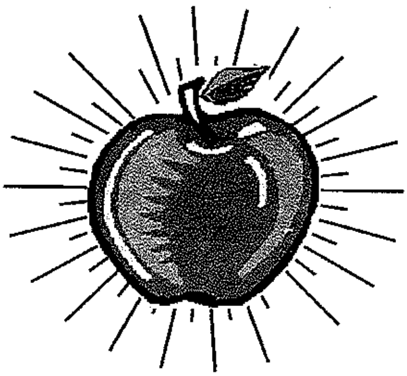

चित्र 1.07

***(ii)* आकर्षण बल** :-यह बल दृश्यमान नहीं होता, परन्तु प्रकाश बल के साथ मिलकर पूरी सृष्टि का संचालन करता है। ***ये दोनों गुण उस अव्यक्त परब्रह्म परमात्मा के स्थायी प्रकट रूप हैं। इन्हीं को भारतीय चिन्तकों ने अभूतपूर्व प्रतीकों का रूप प्रदान किया, ताकि मानव बुद्धि उसको समझ सके और साधना के द्वारा उसका साक्षात्कार भी कर सके*** [a] ।

***2(ix)* परमात्मा के अस्तित्व का उदाहरण :-** एक सज्जन ईश्वर की सत्ता को नहीं मानते थे, परन्तु उसका बेटा अपनी माँ के द्वारा दिए गये संस्कारों के कारण परमात्मा की सत्ता पर विश्वास करता था। अपने पिता को यह बात समझाने के उद्देश्य से बेटे ने एक कहानी गढ़ी और सुन्दर सी एक पेन्टिंग बनायी। उस पेन्टिंग को उसने अपने अध्ययन कक्ष में टाँग दिया तथा अपने पिता को दिखाया। पिता ने बेटे की पेन्टिंग की प्रशंसा करते हुए उसे बारम्बार शाबाशी दी। तब बेटे ने कहा, कि वह पेन्टिंग उसने नहीं बनायी, बल्कि हुआ यह, कि कमरे में टेबल पर बड़ा-सा कागज़ पड़ा था, कुछ रंग पड़े थे तथा ब्रुश भी था। कमरे की खिड़की खुली थी, हवा आयी, रंग और ब्रुश हिले और कागज़ पर पेन्टिंग बन गयी। बस ! अब पिता को समझ आ गया कि, महाकाश में अरबों आकाशगंगाएँ, असंख्य तारे (सूर्य) रोड़े-पिण्ड एवम् अणु-परमाणु अनन्त काल से गतिशील हैं। आकाशगंगाएँ विघटित होती हैं तथा कृष्ण शक्ति (Dark Matter) में बदल जाती हैं। तारे-सितारे विघटित होकर लाल दानव [b] (Red Giant) श्वेत बौने [b] (White Dwarf) सुपरनोवा [b] (Supernova), न्यूट्रॉन तारे [b] (Neutron Star) पल्सर (Pulsar) तथा कृष्ण विवर [b]

---

**a** इन दोनों प्रतीकों का स्पष्टीकरण **पञ्चम सत्र** में विस्तार से किया गया है।

**b** तारों (सूर्यों) की मृत्यु की प्रक्रिया में विशिष्ट आकार के सूर्यों की अन्तिम अवस्थाओं को Red Giant, White Dwarf, Supernova, Neutron Star, Pulsar अथवा Black hole नामों से जाना जाता है। हमारे तथा हमारे जैसे आकार के सूर्य की मृत्यु का वर्णन चतुर्थ सत्र में **'प्रलयकालीन सूर्य'** शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है, कि ये सूर्य मृत्योपरान्त मृत आकाशगंगा के चारों ओर लिपट जाते है, जिन्हें प्रतीकों की भाषा में शंकर जी के गले में पड़ी हुई मुण्डों की माला कहा है।

(Black hole) में परिवर्तित हो जाते हैं अर्थात् यह सब सतत चलने वाली प्रक्रिया अवश्य ही किसी अव्यक्त असीम शक्ति से सम्पन्न महाबल के द्वारा सम्पादित की जाती है एवम् इस सृष्टि में, जो इतनी सुन्दर कलाकृति दिखायी पड़ती है, वह अपने आप नहीं बन सकती। सृष्टि में 'सौन्दर्य' बिखेरने वाला कोई महान कलाकार अवश्य है, जो अपनी निपुण तूलिका से अभूतपूर्व चमत्कारपूर्ण कलाकृतियों का निर्माण करता रहता है। वही सृजन करता है, वही पालन करता है, फिर विनाश भी वही करता है। ***वह लीलाधारी सदैव निष्काम भाव से क्रीड़ा करता रहता है और आनन्द में रहता है। भारत के दिव्य मनीषियों ने उस अव्यक्त शक्ति का 'समाधि' द्वारा पृथ्वी पर अवतरण भी किया तथा साक्षात्कार भी। क्योंकि परमात्मा ने हम सब मानव मूर्तियों का निर्माण किया है, तो मानव ने भी अव्यक्त परमात्मा की अनेकानेक मूर्तियों का निर्माण करके 'चक्र के सिद्धान्त'*** [a] ***का अनुपालन करते हुए परमात्मा में विलीन होने की सहज तकनीक का आविष्कार किया।***

## 3. मानव धर्म का क्रमिक विकास - एक परिकल्पना :-

***3(i) सृष्टि के आदिकाल में मानव की स्थिति :-*** सर्वप्रथम पृथ्वी पर पहली बार जीवन जीने योग्य वातावरण अर्थात् उचित तापमान, आर्द्रता, ऑक्सीजन के तैयार होते ही विविध प्रकार की वनस्पतियाँ, पशु-पक्षी, फल-फूल आदि का सृजन हुआ। प्रकृति द्वारा की गयी इस प्रक्रिया में लगभग ढाई अरब वर्ष लग गये। "डार्विन" के विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार अन्त में ऐसा मानव उत्पन्न हुआ, जो कुछ सोच-समझ सकता था, जिसे विज्ञान की भाषा में Homo-Sapience कहा गया है, उसने बड़ी ही कौतूहलपूर्ण दृष्टि से अपने चारों ओर देखा। वह गरजते मेघ तथा चमकती विद्युत से बहुत घबड़ाया भी। शीत, वर्षा एवम् तपती धूप से परेशान भी हुआ। इनसे उत्पन्न कष्टों के अनुभव के पश्चात् उसे लगा, कि कोई अदृश्य शक्ति उसे भयभीत कर रही है तथा कष्ट दे रही है। परन्तु कुछ पीढ़ियों के अनुभव ने उसके मन से वातावरण का भय निकाल दिया और इसी बीच जंगली हिंसक पशुओं से सामना होने पर वह पेड़ पर चढ़कर अपना बचाव करना भी सीख गया।

***3(ii) पाषाण युग :-*** आदि मानव ने इस काल से विकास की प्रथम सीढ़ी पर चढ़ने का अनुभव प्राप्त करना आरम्भ किया। उसने भूख मिटाने हेतु जंगली जानवरों का शिकार करना पशुओं से सीखा। क्योंकि जंगल का नियम भी सदैव से यही रहा है, कि ताकतवर कमज़ोर को खाता है, अतएव जैसे-जैसे उसकी बुद्धि का विकास होता गया, उसने पत्थर से नुकीले हथियार बनाए, ताकि उससे वह पशुओं का शिकार कर सके। यहाँ से पाषाण युग का आरम्भ हुआ। सदियों तक पाषाण युग चलता रहा और तब तक मानव नंगा ही रहता था और पशुओं का शिकार करता था। इस प्रकार वह अपनी भूख को शान्त करता था। नंगे रहने पर स्त्री-पुरुष द्वारा, स्वच्छन्द सम्भोग द्वारा पशुओं की प्रवृत्ति वाली सन्तान ही उत्पन्न होती थी। ***चूँकि जंगल का वातावरण था, अतएव ज्ञान भी जंगली पशुओं से ही प्राप्त होता था, अन्य कोई साधन ही न था।*** स्वच्छन्द सम्भोग में एक नर कई मादाओं का गर्भाधान करता था, जैसा कि कई पशु-प्रजातियों में देखा जाता है। नर की आयु तथा मादा की आयु आदि का कोई विचार न

---

a 'चक्र के सिद्धान्त' का विस्तृत वर्णन **द्वितीय सत्र** में किया गया है।

था। बेटा-बेटी, पिता-भाई, माँ-बहिन सभी मात्र नर एवम् मादा ही थे, इनमें कोई अन्तर कर सकने की क्षमता का विकास ***'पाषाण-युग'*** तक नहीं हुआ था। एक लम्बे समय के पश्चात् उसने जंगल में रहते हुए हिंसक पशुओं से अपनी सुरक्षा करने हेतु पेड़ों पर रहने के स्थान पर प्राकृतिक गुफाओं की शरण ली तथा गुफा के बाहर आग जलाकर जानवरों से सुरक्षा सुनिश्चित की। तत्पश्चात् पशु-पालन व्यवस्था के विकास के साथ-साथ अतिरिक्त सुरक्षा की दृष्टि से एक नर तथा अधिक मादाओं के स्थान पर अतिरिक्त नरों का झुण्डों में रहना आवश्यक माना जाने लगा।

***3(iii)* पशु पालन** :- जंगली पशुओं के बच्चों द्वारा दूध पीते देखकर आदि मानव ने धीरे-धीरे उनसे उनके दूध का प्रयोग करना सीखा। ऊँट, नील-गाय, भेड़, बकरी तथा गायों को धीरे-धीरे मानव ने अपने प्रयोग में लाने का प्रयास किया और इस प्रकार पशुओं का माँस तथा दूध दोनों का प्रयोग प्रारम्भिक काल में किया गया। जब जानवर इस प्रकार लाभदायक सिद्ध होने लगे, तब तो झुण्डों में जानवरों को पालना और उनका रख-रखाव बड़े पैमाने पर होने लगा। अब अलग-अलग गिरोहों में रह रहे मानव अधिक से अधिक पशुओं को जोड़ने लगे तथा दूसरे गिरोह के पशुओं का लालचवश अपहरण अथवा बलपूर्वक छीनना आरम्भ हो गया। इस प्रकार गिरोहों में प्रतिद्वन्दता पहले मादाओं के कारण, फिर पशुओं के कारण और अन्त में जब वे खेती-बाड़ी करते हुए एक स्थान पर रहने लगे, तब जमीन के कब्जे को लेकर लड़ाइयाँ और रक्तपात होने लगा।

विश्व के ऐसे क्षेत्र भी थे, जहाँ पर मरुस्थल थे अथवा बर्फानी क्षेत्र, वहाँ पर खेती की सम्भावनाएँ उस काल में लगभग नहीं के बराबर थीं, ***अतएव उस क्षेत्र के गिरोह (कबीले) मात्र पशु-पालन तक ही सीमित रह गये और वे खेती-बाड़ी की उन्नत अवस्था प्राप्त कर ही नहीं सके तथा उस समाज की समझ भी सीमित रह गयी।***

***3(iv)* खेती-बाड़ी का विकास** :- भारत में विस्तृत भूभाग खेती-बाड़ी के लिए उपलब्ध था, अतएव चारों ओर तरह-तरह की वनस्पति का विस्तार हुआ, तभी उस आदि-मानव ने उन वनस्पतियों के साथ कुछ प्रयोग किए। उन प्रयोगों से उसकी भूख को शान्ति मिली और उसने उन वनस्पतियों को और अधिक उगाने की सोची। उपजाऊ ज़मीन थी, अतः यह प्रयोग शीघ्र फलित हुआ। जैसे-जैसे खेती-बाड़ी की समझ बढ़ी, उस प्रकार के औजार, जो उस काल में हल चलाने में काम आ सकते थे, विकसित हुए और मानव सभ्य-समाज की स्थापना की ओर अग्रसर होने लगा। उसकी आवश्यकताएँ बढ़ीं, जैसे - वर्षा, ताप, शीत से रक्षा हेतु पहले घास-फूस से, तत्पश्चात् मानव ने मिट्टी से घर बनाना सीखा। जंगली जानवरों की छाल से तन ढका जाने लगा। सदियाँ बीत गयीं, तब मानव में, भूख और सम्भोग सुख से कुछ और अधिक जानने की चाह जागी। उसने खेती-बाड़ी करते हुए ऋतु-चक्रों का अनुभव प्राप्त किया एवम् इन सबका नियमपूर्वक गहरायी से अध्ययन करना भी प्रारम्भ कर दिया। हर विषय की विस्तार से सूचनाएँ एवम् अनेक प्रकार के आँकड़े एकत्रित किए जाने लगे। उनका निरीक्षण, परीक्षण एवम् विश्लेषण आरम्भ हुआ। सर्वप्रथम खेती सम्बन्धी अध्ययन बारीकी से किए गये तथा उस क्षेत्र में अनेक प्रयोगों के पश्चात् सुधार हुए। ***जबकि ऋतु चक्रों के ज्ञान का विकास मरुस्थलीय***

*एवम् बर्फीले क्षेत्रों में नहीं हो पाया। इसीलिए उनके पास तिथियों का तथा काल-गणना का ज्ञान नगण्य रहा। बहुत बाद में कुछ क्षेत्रों जैसे - मिस्र, यूनान तथा बेबीलोनिया आदि में भारत से आध्यात्मिक तथा अन्य प्रकार का ज्ञान पहुँचा भी, परन्तु कदाचित् वह फिर भी भारत जितना पूर्ण विकसित नहीं हो पाया।*

*3(v)* **भाषा का विकास** :- संकेतों द्वारा धीरे-धीरे विचारों का आदान-प्रदान करने की क्षमता का विकास हुआ। एक लम्बे समय के पश्चात् संकेतों से शब्दों, फिर वाक्यों और कुछ कामचलाऊ भाषा बनी। जंगली जानवरों के स्तर से आगे बढ़ते हुए मानव ने समाज में रहकर इस भाषा के माध्यम से कुछ और बातें भी सीखीं। ***इस बीच कुछ ऐसी जीवात्माओं ने जन्म धारण किया, जो पूर्व जन्मों के अपने संस्कारों से उन्नत थीं और उन्होंने समाज को उन्नत दिशा दी।*** भारतीय ग्रंथों का मानना है, कि सभी जीवात्माएँ सृष्टि की समाप्ति पर ब्रह्मा के सूक्ष्म शरीर में लीन हो जाती हैं तथा कर्म एवम् प्रवृत्ति के आधार पर सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा के शरीर से पुनः उत्पन्न होती हैं [a]। यह प्रक्रिया प्रलय काल के अन्त में तथा हर कल्प के आरम्भ में बारम्बार होती है।

ऊपरी दृष्टि से देखने से ऐसा लगता है, कि डार्विन के विकासवाद के अनुसार जीन्स की कारीगरी (Gene Engineering) द्वारा प्रकृति क्रमशः विकास करती है और 'जीन' के क्रम से मानव तक का विकास होता है, परन्तु सृष्टि में आकाश, पाताल (समुद्रों की तलहटी और पता नहीं कहाँ-कहाँ पर विभिन्न कालावधि में असंख्य जीवों का सृजन होता है। वस्तुतः सृष्टि के प्रारम्भ में ताप अधिक तथा प्रकाश कम होता है, और भोजन की उपलब्धता भी सीमित होती है, अतः ऐसी जीवात्माओं का जन्म होता है, जो अँधेरे, उच्च ताप एवम् उपलब्ध भोजन में जीवित रह सकें। जैसे-जैसे वातावरण में बदलाव आता है, क्रमशः उसी के अनुकूल प्राणियों का जन्म हो जाता है, **क्योंकि कर्म से उत्पन्न प्रवृत्ति रूपी बीज ब्रह्मा (सृष्टि) में पहले से ही सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहता है।** इस प्रकार की समझ भारतीयों को ही हो पायी, जिन्हें उन्होंने **'कर्म'** तथा **'प्रवृत्ति'** इन दो सिद्धान्तों के अन्तर्गत हमें समझाया है। भारतीय दृष्टि से सृष्टि रचना का विस्तृत वर्णन चतुर्थ सत्र में अनुच्छेद सात के अन्तर्गत किया गया है।

*3(vi)* **वैदिक युग का आरम्भ** :- किसी वस्तु को घूमते देखकर मानव को चक्के के निर्माण की प्रेरणा मिली और इस प्रकार पहिए का आविष्कार हो गया। भार उठाने में बड़े लट्ठे की सहायता लेने से लीवर का आविष्कार हुआ। बैलगाड़ी, रथ और रहँट आदि कितनी ही अन्य प्रकार की सुविधाओं का मानव ने विकास कर डाला और इस प्रकार जीवन सुखद बनता गया।

---

a **भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते। रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे।।** *(गीता-8/19)*
अर्थ :- हे पार्थ ! वही यह भूत समुदाय उत्पन्न हो होकर प्रकृति के वश में हुआ रात्रि के प्रवेशकाल में लीन होता है और पूर्व जन्म के कर्मों (संस्कारों) के अनुसार दिन के प्रवेशकाल में पुनः उत्पन्न होता है।

***प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।***
***भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्।।*** *(गीता-8/19)*

**अर्थ :-** अपनी प्रकृति को अंगीकार करके स्वभाव (प्रवृत्ति) के बल से परतन्त्र हुए इस सम्पूर्ण भूत समुदाय को बारम्बार उनके कर्मों के अनुसार रचता हूँ।

लीवर तथा चाक के आविष्कार से मकान बनाने के तथा बर्तनों के बनाने की विधियों का विकास हुआ। 'मोहनजोदड़ो' और 'हड़प्पा' की खुदाई में मिली वस्तुओं और घरों तथा नगर की रचना को देखकर इस प्रकार की विकास की कथाओं पर प्रकाश पड़ता है।

मानव जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं, जैसे - ***'रोटी', 'कपड़ा'*** और ***'मकान'*** की पूर्ति के होते ही मानव का ध्यान कौतूहलपूर्ण सृष्टि में व्याप्त अनेक रहस्यों को जानने की ओर मुड़ गया। तब मानव ने विभिन्न क्षेत्रों में फैले ज्ञान का अध्ययन करने हेतु कई-कई व्यक्तियों के समूह को निरीक्षण और आँकड़ों को एकत्रित करने का कार्य सौंप दिया। इन आँकड़ों का परीक्षण बारम्बार करके जो अनुभव प्राप्त होते गये उनका क्रमबद्ध तरीके से भोजपत्रों पर लिख लेने की विधि का आविष्कार भी हुआ, परन्तु अधिकांश खोजों को मानव ने स्व-स्मृतियों में संजोकर ही अगली पीढ़ी को यह जानकारी दी। पूर्व जानकारियों के आँकड़ों को याद रखना तथा अपने जीवनकाल में उन शोधकर्त्ताओं द्वारा स्वयम् के द्वारा किए गये शोधों को उस पूर्वकाल की जानकारी से जोड़ते जाना, बस यही क्रम सदियों तक चलता रहा।

**4. वैदिक युग के महान कार्य :-** शोधकर्त्ताओं ने अपने आप से तीन प्रश्नों को बारम्बार पूछा - ***(a) मैं कौन हूँ (b) मैं कहाँ से आया हूँ (c) मेरे जीवन का उद्देश्य क्या है ?*** इन प्रश्नों को अपने आपसे पूछते-पूछते वैदिक काल के खोजी साधकों ने अचानक एक विधि को पा लिया। वह विधि थी ***'ध्यान'***। मन की एकाग्रता प्राप्त होते ही उन्हें 'ध्यान' की गहराइयों में डूबने की कला आ गयी, तो फिर प्रकृति के अनेक रहस्य उनके चित्तपटल पर एवम् बौद्धिक धरातल पर साक्षात् दृश्यमान होने लगे। जिस आकाशगंगा का चित्र हम आज रेडियो-टेलिस्कोप द्वारा बना पाये हैं, उसी आकाशगंगा का चित्र गहन ध्यान में उनके चित्त-पटल पर उभरा होगा। अनेकानेक आकाशगंगाओं के दौड़ने की ध्वनि को उन्होंने **'ॐ'** ध्वनि के रूप में सुना। आकाशगंगा के चित्र से **'ॐ'** के चित्र का विकास हुआ। इसका स्पष्टीकरण आगे के सत्रों में किया जायेगा। ऐसा लगता है, कि तारों-सितारों की गति ग्रह-नक्षत्रों, सूर्य-चन्द्रों की तमाम प्रकार की जानकारियाँ उन्हें ध्यान द्वारा ही प्राप्त हुई थीं। खेती-बाड़ी में ऋतु-चक्रों का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक था, ताकि ठीक समय पर खेतों की फसल को बोया तथा काटा जा सके। इन महत्त्वपूर्ण खोजों से उन्होंने ऐसे विकसित ***'कैलेण्डर'*** का निर्माण किया, जो आज भी विश्व का सर्वश्रेष्ठ 'कैलेण्डर' है। सूर्य एवम् चन्द्र दोनों की गतियों का समन्वय करके भारत में तीन वर्ष में एक माह की वृद्धि कर दी जाती है और इस प्रकार वर्षा चक्र एवम् नक्षत्रों की गति का हिसाब रखा जाता है, जबकि ग्रिगेरियन (अँग्रेजी) ***'कैलेण्डर'*** में अभी भी सुधार किए गये हैं। पशुपालन के युग में मरुस्थलीय प्रदेशों में निर्मित 'कैलेण्डर' से पूरे वर्ष में पड़ने वाले त्यौहार कभी गर्मी में तथा कभी शीत ऋतु में आते हैं तथा उनकी तिथि का निर्णय चाँद के दिखायी

**विशाल समूह द्वारा खोज**

**चित्र 1.08**

अथवा न दिखायी देने पर निर्भर करता है। बादलों के कारण यदि चाँद न दिखायी दिया, तो त्यौहार की तिथि को टाल दिया जाता है। चन्द्रमा का मानव जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। ज्योतिष में राशि-चक्र द्वारा मानव मन के व्यवहार का अध्ययन जिस बारीकी से भारतीय कर पाये हैं, वह अद्वितीय है। इस मानव मन के अध्ययन का उपयोग उन्होंने उसे नियंत्रित करने के उपायों में लगा दिया, ताकि शान्त मन ईश्वर की उपलब्धि की ओर बढ़ता जाए। प्रदोष-व्रत, एकादशी-व्रत, कृष्ण-अष्टमी, रामनवमी, शिवरात्रि-व्रत, होली, दीपावली, दशहरा, श्रावणी आदि त्यौहारों की तिथियों का चयन चन्द्रमा की गति तथा उसके चुम्बकीय प्रभाव का अध्ययन करके किया गया और इस प्रकार दूरगामी परिणामों को प्राप्त करने की विधि का आविष्कार किया गया। ज्योतिष-शास्त्र की सर्वश्रेष्ठ रचना *'भृगुसंहिता'* विश्व की अनुपम रचना है। यह तो एक क्षेत्र की छोटी-सी बात है। मानव जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है, जिसपर शोध नहीं किए गये। वायुयान, जलयान, रॉकेट, मिसाइल तरह-तरह के विस्फोटक तथा ऐसे-ऐसे अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण किया गया, जो मंत्रों के द्वारा अर्थात् मनः शक्ति द्वारा संचालित होते थे। अस्त्र-शस्त्रों को आकाश में ही नष्ट कर देने की कला का विकास भी हुआ, जिसे आज के युग में स्टार-वार (Star War) के नाम से जाना जाता है। आधुनिक युग में इस तकनीक का आविष्कार बहुत ताज़ी घटना है। लाखों ऐसी शोध पाँडुलिपियों को आक्रमण-कर्त्ताओं द्वारा या तो जलाकर राख कर दिया गया अथवा बचे-खुचे उन महान संस्कृत ग्रंथों को जर्मनी आदि कई अन्य विदेशी अन्वेषक गुलामी के दौरान भारत देश से बाहर ले गये। अकेले ***इंगलैण्ड*** ने ही ***'इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी'*** के नाम से ***अस्सी हजार संस्कृत पाण्डुलिपियों का जखीरा अपने यहाँ इकट्ठा कर रखा है।***

***4(i)* वेदों के ज्ञान का आविष्कार एक बड़े समूह द्वारा :-** पदार्थ जगत के गुण-धर्मों को खोजते-खोजते उन ऋषियों ने आत्मा और परमात्मा तक की खोज का सफर पूरा किया, जो मानव जीवन की चरम स्थिति हैं। ***इस प्रकार की स्थिति की प्राप्ति अट्ठासी हजार (88,000) शौनकादि ऋषियों के विशाल समूह द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी के अथक प्रयासों से सम्पन्न हुई तथा इस ज्ञान की पूर्णता कई अन्य महर्षियों एवम् ब्रह्मर्षियों के सहयोग से प्राप्त हुई।*** इन महर्षियों एवम् ब्रह्मर्षियों में ***वशिष्ठ, विश्वामित्र, बाल्मीकि, जाबाल, अगस्त्य, भरद्वाज, गौतम*** आदि मुख्य हैं। वेदों के ज्ञान को विकसित होने और उसे परिपक्व होने में भी बहुत लम्बा समय लगा, इसीलिए वेदों में लिखित ज्ञान इतना विशाल महासागर बन गया, कि इससे आगे कुछ भी खोजना शेष ही नहीं रहा। ***अतएव वेदों के ज्ञान को 'ब्रह्म' की वाणी कहा गया अर्थात् विशाल बुद्धि द्वारा निर्णीत ज्ञान। तभी इसे त्रिकाल सत्य भी कहा गया, क्योंकि इससे आगे कुछ भी खोजने योग्य शेष नहीं बचा था।***

***4(ii)* वेदों के ज्ञान का उद्देश्य :-** वेदों का ज्ञान शाश्वत है तथा यह ज्ञान विश्व के विशाल कम्प्यूटर (Supreme Computer) में सदैव से स्थित है। कल्प के आदि में शोधकर्त्ता इस ज्ञान का समाधि द्वारा दोहन करते रहे हैं तथा प्राचीन समय में इस ज्ञान को मौखिक रूप से गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा अगली पीढ़ी तक पहुँचाने का विधान था। अतएव इस ज्ञान को श्रुत (सुना हुआ) ज्ञान कहा गया। अब से लगभग पाँच सहस्र वर्ष पूर्व, ऋषि वेदव्यास द्वारा सम्पूर्ण

श्रुत ज्ञान को चार खण्डों में लिपिबद्ध किया गया। ये चार खण्ड - ***ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद*** एवम् ***अथर्ववेद*** नामों से प्रसिद्ध हुए।

वेदों में निहित शोध-कार्यों के सम्बन्ध में एक विशेष बात यह है, कि वेदों का ज्ञान मात्र ***'आत्मा-परमात्मा'*** (अध्यात्म) सम्बन्धी शोध-कार्य तक ही सीमित नहीं था, अपितु जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है, जिसपर वैदिक ऋषियों ने शोध-कार्य न किए हों, अतएव यह ज्ञान सार्वकालिक, सार्वभौमिक एवम् सार्वआयामी भी है। स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं के लिए ***'आयुर्वेद'*** जीवन को सुखद, एवम् धन-सम्पत्ति से भरापूरा रखने हेतु तमाम प्रकार के 'यज्ञों' का विधान, मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा के मोक्ष प्राप्ति हेतु कई प्रकार के योगों का विकास किया गया। पूरी पृथ्वी एक ***'कुटुम्ब'*** (परिवार) है, अतएव सम्पूर्ण पृथ्वीवासी सुखी व समृद्ध हों तथा सभी मानव इस संसार के ***माया-जाल*** से मुक्त हों, ***यही उनकी खोजों का मूल उद्देश्य रहा है।***

***4(iii) परिभाषाएं :-***

• **ऋषि :-** शोधकर्त्ता अर्थात् ***'आचार्य'*** तथा जो ज्ञान के ***तीनों आयामों*** (आध्यात्मिक, आधिदैविक एवम् आधिभौतिक) की पूरी-पूरी समझ रखता हो।

• **महर्षि :-** शोध संस्थान का शीर्षस्थ पदाधिकारी अर्थात् ***'उपकुलपति'***।

• **ब्रह्मर्षि :-** आश्रम का स्वामी अर्थात् ***'कुलपति'*** तथा जिसने ब्रह्म का साक्षात्कार भी कर लिया हो।

• **पदनाम :-** यहाँ पर एक बात स्पष्ट रूप से और समझ लेनी होगी, कि ***'शौनकादि'*** ऋषि तथा ***'वशिष्ठ', 'विश्वामित्र', 'परशुराम', 'गौतम', 'भरद्वाज', 'बाल्मीकि', 'जाबाल', 'वेदव्यास'*** आदि महर्षिगण, ये सभी किसी व्यक्ति विशेष के नाम तो हैं ही, ये ***'पद-नाम'*** भी बन गये हैं। गुरु-शिष्य परम्परा के अनुसार ये पदनाम आदिकाल से चलते चले आ रहे हैं। इन्हीं गुरुओं के नाम पर गोत्र शब्द बना है। अर्थात् समाज में 'भरद्वाज' ऋषि के जितने भी शिष्य होंगे, वे सभी अपने गुरु के गोत्र के भारद्वाज माने जायेंगे। अतएव ऐसा हुआ है, कि किसी परशुराम जी का वर्णन श्रीराम के काल अर्थात् त्रेता युग में आता है, पुनः इनके नाम की चर्चा द्वापर युग में भी आती है। लगभग 1500 वर्ष पूर्व उत्पन्न हुए आदि-शंकराचार्य के शिष्य आज भी शंकराचार्य के पद-नाम से जाने जाते हैं। कुछ पदनामों का स्पष्टीकरण निम्न पंक्तियों में दिया जा रहा है :-

**शौनक :-** ऐसा लगता है, कि वैदिक काल में ***'अट्ठासी हजार'*** वैज्ञानिकों का एक मण्डल था। इस मण्डल का नाम था ***'शौनक'***। इस मण्डल के शीर्षस्थ नेता का नाम था ***'सूत'***। 'सूत' अर्थात् सूक्ष्म बुद्धि सम्पन्न व्यक्ति। इन अट्ठासी हजार ***'शौनकादि'*** शोधकर्त्ताओं ने अपने-अपने शोधों से वेद को ज्ञान का महासागर बना दिया। जैसे सम्पूर्ण विश्व में सब ओर से नदियाँ आ-आकर समुद्र में विलीन हो जाती हैं और महासागर का निर्माण करती हैं, उसी प्रकार से वेद का ज्ञान वह महासागर है, जिसको आज तक किसी भी युग के गुरु द्वारा पूरी तरह से समझा ही नहीं जा सका है। सभी गुरु समुद्र-तट पर थोड़ी-थोड़ी डुबकी लगाते रहे और उस युग की तात्कालिक आवश्यकताओं के अनुसार समाज को शिक्षा देते रहे। गुरुओं ने समाज को उतना ही बताया जितनी शैक्षिक योग्यता अथवा पचा सकने की क्षमता उस युग के समाज

को थी, ताकि उस समाज की सामयिक समस्याओं का समाधान हो सके। जैसे - भगवान बुद्ध ने ***'वर्ण-व्यवस्था'*** का, भगवान महावीर ने ***'पशु-हिंसा'*** का तथा स्वा॰ दयानन्द सरस्वती ने ***'मूर्तिपूजा'*** का खण्डन किया। ये तीनों समस्यायें उस काल विशेष की ज्वलन्त समस्यायें थीं।

**वशिष्ठ :-** राजा दशरथ के राज्य में राजगुरु के पद पर आसीन ***'ऋषि वशिष्ठ'*** के नाम का वर्णन 'रामचरित मानस' आदि रामायणों में मिलता है। परन्तु ऐसा लगता है, कि किसी भी राजा के राजगुरु पद पर आसीन व्यक्ति को वशिष्ठ के नाम से जाना जाता था। वशिष्ठ अर्थात् विशिष्ट व्यक्ति शायद कुछ इस प्रकार का भाव रहा होगा। राजगुरु का कार्य राजा को राजकार्य चलाने में धर्म के नियमों के अनुसार परामर्श देना था। कहा जाता है, कि राजा दशरथ के संसद् में एक सौ आठ ***'विप्र-सांसद'*** थे। ***'विप्र'*** का अर्थ होता है, जिन्होंने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर ली हो, अर्थात् त्यागी, संयमी, तपस्वी, ब्राह्मण वर्ग को विप्र कहा गया लगता है। वे जो निर्णय बहुमत से देते थे उसका अनुपालन करवाना ***'वशिष्ठ'*** का कर्त्तव्य था तथा वशिष्ठ की अनुमति के बिना राजा दशरथ राज-काज सम्बन्धी कोई भी निर्णय नहीं कर सकते थे। ऐसा उच्चकोटि का प्रजातन्त्रीय विधान वैदिक काल में था, जो आज भी एक आदर्श है। प्रजा का पुत्रवत् पालन करना एवम् प्रजा को हर हाल में प्रसन्न रखना, राजा का सर्वोच्च धर्म था। ऐसा न करने पर सतर्कता विभाग के स्वामी ***परशुराम*** उस राजा को कड़े से कड़ा दण्ड देते थे। सतर्कता विभाग के लोप होने के कारण गुरु लोग राजा के दबाव में अथवा लालच के कारण भ्रष्ट होने लग गये। परिणामस्वरूप राजा लोग स्वच्छन्द व्यवहार करने लगे और लोक-रंजन का वैदिक नियम टूटस्थ गया। भारत में अँग्रेजों का राज होने तक राजगुरु की परम्परा रही है।

**परशुराम :-** ऋषियों द्वारा बनाए गये धर्म के नियमों का ठीक से अनुपालन क्षत्रिय राजाओं द्वारा होता रहे, इस बात पर निरन्तर दृष्टि रखना ***'सतर्कता-विभाग'*** (Vigilance Deptt.) का कार्य था। इस सतर्कता विभाग के शीर्षस्थ व्यक्ति का पदनाम था ***'परशुराम'***। 'परशुराम' शब्द का अर्थ कुछ इस प्रकार से किया जा सकता है - परशु (फरसा) धारण करने वाले ***'राम'*** अर्थात् दण्ड देने का अधिकार रखने वाले। 'परशुराम' के नाम की चर्चा श्रीराम के समय अर्थात् त्रेता युग में आती है तथा पुनः द्वापर में भी वे अपना कर्त्तव्य निभाने पहुँच जाते हैं। जब उन्हें यह पता लगा, कि किसी क्षत्रिय पुत्र श्रीराम ने उनके गुरु का धनुष तोड़ा है, वे उन्हें युद्ध के लिए ललकारने पहुँच गये। इसी प्रकार से जब भीष्म पितामह ने अम्बा से विवाह करने से मना कर दिया, तब अम्बा की शिकायत पर उन्होंने भीष्म पितामह से कई दिनों तक युद्ध किया।

इस सतर्कता एवम् कठोरता के कारण क्षत्रिय राजा निरंकुश नहीं हो पाते थे तथा राजा लोग प्रजा का पालन पुत्रवत् करते थे एवम् समाज में सर्वत्र सुख शान्ति का साम्राज्य था।

**विश्वामित्र :-** उत्तर भारत में स्थित अस्त्र-शस्त्र (मिसाइल आदि) एवम् अन्तरिक्ष यानों पर होने वाले शोध-संस्थान के शीर्षस्थ पद के सर्वोच्च अधिकारी ***'विश्वामित्र'*** के नाम से जाने जाते थे। पौराणिक कथा के अनुसार ऐसा लगता है, कि इन्होंने कई अन्तरिक्ष स्टेशन एवम् अन्तरिक्षयान महाकाश में भेजे थे। कोलम्बिया जैसा एक अन्तरिक्ष यान, मार्ग से भटक कर असफल हो गया और अधर में लटककर रह गया (इसी यान में उन्होंने एक त्रिशंकू नामक राजा को यात्रा पर भेजा था। पुराणों में कथा आती है, कि देवताओं को यह बात पसन्द नहीं

आयी, अतएव उस यान को उन्होंने लौटा दिया। यह प्रतीकात्मक भाषा है, जिसका अर्थ है, कि यान लक्ष्य तक (कदाचित् सैटेलाइट स्टेशन) तक नहीं पहुँच पाया।

इन्होंने 'गायत्री मंत्र' पर शोध की थी तथा ***'ॐ'*** ध्वनि को सुना था [a]। इन्होंने परमात्मा ***'राम'*** का साक्षात्कार भी किया था, अतः वे ब्रह्मर्षि के पद पर आसीन थे।

**अगस्त्य :-** ये दक्षिण भारत में स्थित अस्त्र-शस्त्र (मिसाइल आदि) पर होने वाले शोध-संस्थान के शीर्षस्थ पदाधिकारी थे। पौराणिक कथा के अनुसार ऋषि अगस्त्य ने ***'श्री राम'*** को उस ***'अस्त्र'*** और ***'समय'*** का ज्ञान दिया था जिससे रावण मारा गया। वे ***'ब्रह्मर्षि'*** के पद से भी विभूषित थे तथा भविष्य द्रष्टा भी थे।

**भरद्वाज :-** उत्तर भारत में ही स्थित एक ऐसे शोध संस्थान के शीर्षस्थ पदाधिकारी भरद्वाज के नाम से जाने जाते थे, जिन्होंने जलयानों, वायुयानों आदि अनेक प्रकार के यानों पर शोध कार्य किए थे। राम का साक्षात्कार करके ये भी ***'ब्रह्मर्षि'*** की श्रेणी में आ गये।

**बाल्मीकि एवम् वेदव्यास :-** ऋषि बाल्मीकि उच्च कोटि के मनोवैज्ञानिक तथा अध्यात्म ज्ञान के श्रेष्ठ कवि एवम् लेखक थे। उन्होंने ***'रामायण'*** जैसे इतिहास ग्रंथ का सृजन करके भारतीय संस्कृति रूपी नदी के एक कूल (किनारे) का सृजन किया। ऋषि वेदव्यास ने भारतीय संस्कृति रूपी नदी के दूसरे किनारे का सृजन ***'महाभारत'*** महाकाव्य का लेखन करके किया। ये दोनों ऋषि ***'ब्रह्मर्षि'*** थे।

**5. मुख्य प्राकृतिक सिद्धान्त :-** ऋषियों ने प्रकृति का गहरायी से अध्ययन किया और अनेक सिद्धान्तों की खोज की तथा उन्हें सभी भारतीय ग्रंथों में विस्तार से प्रतिपादित किया [b]। उनमें से कुछ मुख्य-मुख्य सिद्धान्त निम्न प्रकार से हैं :- *(i)* चक्र/गति/परिवर्तनशीलता एवम् पुनर्जन्म के सिद्धान्त *(ii)* अनुलोम-विलोमता का सिद्धान्त (Law of Opposites) *(iii)* कर्म का सिद्धान्त *(iv)* मृत्युलोक एवम् परलोक का सिद्धान्त *(v)* मोक्ष का सिद्धान्त *(vi)* यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे का सिद्धान्त *(vii)* यज्ञमय जीवन यापन अर्थात् निष्काम सेवा का सिद्धान्त *(viii)* निर्गुण निराकार-अद्वैत उपासना (एकेश्वरवाद) *(ix)* सगुण साकार-द्वैत उपासना (अनेकेश्वरवाद)।

उपरोक्त सिद्धान्तों की खोज भारत के मनीषियों द्वारा की गयी विश्व की अन्यतम् एवम् सर्वश्रेष्ठ खोजें हैं। वैदिक ऋषियों ने उपरोक्त नौ सिद्धान्तों में से अन्तिम तीन सिद्धान्तों का मानव जीवन में अनुसरण करने का विधान बनाया है, ताकि साधक कर्म बन्धन से मुक्त होकर ईश्वर में लीन हो सके।

उपरोक्त सिद्धान्तों की समझ एक समग्रता की सोच है। इस समझ के पश्चात् विश्व में रक्तपात, घृणा एवम् विद्वेष के लिए कोई स्थान ही शेष नहीं रहता। ***इन सिद्धान्तों को अपनाने के पश्चात् कोई भी व्यक्ति ईश्वर की उपासना अल्लाह का नाम लेकर करे अथवा ईशू के नाम से, कोई फर्क ही नहीं पड़ता, क्योंकि तब सभी ब्रह्म के अंश होंगे। वहाँ पर वही राम***

---

**a** गायत्री मंत्र पर विस्तृत वैज्ञानिक चर्चा पुस्तक के भाग-3 में *'मानव धर्म का आधार गायत्री मंत्र'* शीर्षक के अन्तर्गत की गई है।

**b** प्राकृतिक सिद्धान्तों का विस्तृत वर्णन **द्वितीय सत्र** में किया गया है।

***है, वही शंकर भी है और तब सर्वमत समभाव का सही अर्थों में पालन होगा।*** इस समझ के पश्चात् अर्थ-प्रवण-समाज (Money Oriented Society) के स्थान पर नया समाज अर्थात् मोक्ष-प्रवण-समाज (Moksha Oriented Society) की रचना होगी। उपरोक्त सभी सिद्धान्तों की वैज्ञानिक चर्चा क्रमशः की जायेगी।

**प्रतीक (मूर्ति) पूजा**

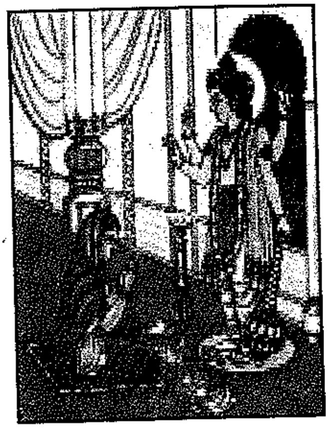

चित्र 1.09

**6.*(i)* मूर्तिपूजा अर्थात् प्रतीक (Symbol) के माध्यम से ईश्वर की पूजा :-** जिस प्रकार आधुनिक युग के कम्प्यूटर की रचना को समझने के लिए कुछ विशिष्ट भाषाओं - कोबोल (Cobol), सी-भाषा (C-Language), फोरट्रेन (FORTRAN) आदि का ज्ञान आवश्यक होता है, ठीक उसी प्रकार से अव्यक्त परमात्मा तथा प्रकृति में प्राप्त परमात्म शक्तियों को प्रतीकों की भाषा द्वारा समझना सरल है। इसीलिए प्रतीकों की भाषा का भारतीय मनीषियों ने आविष्कार करके एक बहुत ही कठिन एवम् अबूझ पहेली को सुलझाया है तथा इस ज्ञान को पूर्वकाल में साहित्य की सुरुचिपूर्ण भाषा में पिरोकर पूरे विश्व में प्रचारित भी किया। सम्पूर्ण विश्व में मूर्तियों का पाया जाना अथवा उनका पूजन किया जाना इस बात का यथेष्ट प्रमाण [a] है, कि यह ज्ञान पूरे विश्व में भारत से ही गया था, क्योंकि अव्यक्त परमात्मा एवम् अन्य देव शक्तियों को साक्षात करने का मूर्तिपूजा एक सरलतम माध्यम है। आज कम्प्यूटर ने विश्व को हिलाकर रख दिया है, जिसका आधार मात्र दो चिह्न हैं :- ***(i)* शून्य (Zero) *(ii)* एक (One)**। यदि ये चिन्ह हटा दिए जायें, तो क्या कम्प्यूटर काम कर सकेगा ? अ,ब,स अक्षरों से बनते हैं शब्द; तथा शब्दों से बनते हैं वाक्य; और वाक्यों से बनती है भाषा। यदि ये अक्षर समाप्त कर दिए जायें, तो क्या हम बन्दरों की भाँति खी-खी नहीं कर रहे होंगे ? a,b,c,x,y,z इत्यादि चिन्हों के माध्यम से गणित (Mathematics) एवम् विज्ञान के अनेक प्रश्नों के हल आसानी से निकाल लिए जाते हैं। इन चिन्हों को समाप्त कर देने पर क्या हम पाषाण युग में नहीं चले जाएंगे ? अतएव उपरोक्त तर्क के आधार पर निराकार परमात्मा की मूर्ति बनाकर तथा उस पर ध्यान एकाग्र करने से परमात्मा का साक्षात्कार सम्भव है। यह अपने आप में भारतीय मनीषियों की बहुत ही श्रेष्ठ खोज है। ***आज मूर्ति अथवा चित्र के माध्यम से रोगों की 'दूर उपचार विधि' (Teletherapy) का प्रचलन है। इसे Pranic healing के नाम से जाना जाता है। चिकित्सक रोगी के चित्र पर अपनी प्राण-शक्ति का प्रहार करता है तथा मीलों दूर बैठे रोगी को चिकित्सक की प्राण-शक्ति रोग को दूर करने में सहायक होती है।*** तान्त्रिक लोग किसी व्यक्ति की मिट्टी अथवा आटे की मूर्ति बनाकर मंत्र शक्ति से व्यक्ति विशेष का प्राण हरण (मारण) अथवा किसी

a इस सम्बन्ध में माननीय रघुनन्दन प्रसाद शर्मा कृत विश्व व्यापी भारतीय संस्कृति "पुस्तक पठनीय है। प्रकाशक-सांस्कृतिक गौरव संस्थान रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110022

व्यक्ति से अलगाव (उच्चाटन) की क्रिया का सफल प्रयोग करते देखे जाते हैं।

इंजीनियर्स को सिखाया जाता है, कि भूमि की नाप-तोल करते समय मार्ग में यदि नदी आ जाए, तो नदी के भीतर घुसे बिना किनारे पर रहकर ही उसकी चौड़ाई को नापा जा सकता है। इस समस्या को ज्यामिति (Geometry) की जानकारी के आधार पर निम्न प्रकार से हल किया जाता है।

***6(ii) ज्यामिति द्वारा हल :-*** नदी की दूसरी ओर यदि कोई वृक्ष हो, नहीं तो लकड़ी का खम्भा ***'क'*** खड़ा कर लिया जाता है तथा इसी प्रकार इस ओर भी खम्भा ***'ख'*** जो ठीक दूसरी ओर के खम्भे के सामने हो, खड़ा कर लिया जाता है। खम्भा ***'ख'*** से 90° के कोण पर नदी के समानान्तर बिन्दु ***'ग'*** तक एक रेखा बना ली जाती है, ताकि इस रेखा का अन्तिम छोर बिन्दु ***'ग'*** हो, जो दूसरे किनारे पर स्थित वृक्ष अथवा बिन्दु ***'क'*** से इस प्रकार की रेखा बनाता हो, कि वे दोनों 45° के कोण पर अवस्थित हो जाएं। बस, अब दूरी ***'ख, ग'*** नाप ली जाती है, जो वास्तव में नदी की चौड़ाई के ठीक बराबर ही होती है, क्योंकि त्रिभुज 'कखग' बिन्दु 'ख' पर 90° का कोण बनाता है और बिन्दु 'ग' पर 45° का कोण। इस प्रकार ज्यामिति के नियम के अनुसार दूरी ***'खग'='कख'*** के है। ***ठीक इसी प्रकार अनन्त परमात्मा की सत्ता को मूर्ति अथवा प्रतीक के माध्यम से साकार करने का आविष्कार पौराणिकों द्वारा की गयी संसार की अद्वितीय खोज है।***

***ज्यामिति द्वारा नदी की चौड़ाई नापने की विधि***

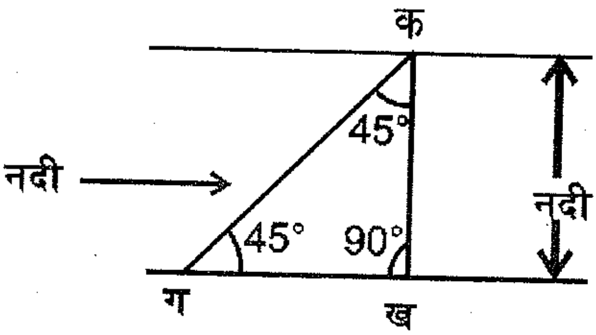


चित्र 1.10

वस्तुतः अवचेतन मन (Sub-conscious) प्रतीकों की भाषा को ही समझता है और बाह्य जगत से प्राप्त होने वाली सभी सूचनाओं को वह सर्व प्रथम अंकों में परिवर्तित करता है, तब रिकार्ड (Record) करता है। अतएव प्रतीकों का मानव जीवन में भारी महत्त्व है, इसे हमारे पूर्वजों ने ही समझा था, इसीलिए परमात्मा को प्राप्त करने का इस सरल मार्ग का प्रावधान उन्होंने किया था ***इस विषय पर देशव्यापी चर्चा होनी चाहिए, फिर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर यह वैज्ञानिक सोच प्रचारित हो और मूर्तिपूजा का मुद्दा सदा-सदा के लिए मान्यता प्राप्त करे। इस मुद्दे के कारण आज जो रक्तपात विश्व में हो रहा है, वैज्ञानिक सोच के प्रसार के पश्चात् समाप्त हो सकता है।*** निराकार पूजा, जो लोग कर सकते हैं, वे अवश्य करें। ***'सनातन धर्म'***

*में दोनों विधियों को मान्यता प्राप्त है, परन्तु इस मुद्दे पर विरोध बन्द होने में सभी का कल्याण है।*

***6(iii)* बहुदेववाद :-** *जीवन में धन, संकटों से रक्षा, बुद्धि, संतान, विद्या आदि की प्राथमिकता हर मानव अनुभव करता है।* अतएव धन की देवी लक्ष्मी, संकट मोचन श्री हनुमान जी, बुद्धि के देवता श्री गणेश जी, विद्या की देवी सरस्वती जी एवम् संतान आदि सभी प्रकार के सुखों के लिए श्री शंकर जी की आराधना का प्रावधान हमारे श्रेष्ठ ऋषियों ने बहुत सोच- समझ कर किया हैं, क्योंकि उन्होंने जीवन को सम्पूर्णता से समझा है। मानव अपनी भावना के अनुरूप जिस-जिस इच्छा का अपने मन द्वारा निरन्तर चिन्तन करता है, वह ***उसका मंत्र बन जाता है।*** मूर्ति तो अन्तर प्रदेश (अवचेतन मन) तक संदेश (Auto Suggestion) पहुँचाने के लिए बाह्य आधार भर होती है। सृजनात्मक शक्ति तो अन्तर में निहित है और जब मानव खुली आँखों अथवा बन्द आँखों से शान्त मन से मूर्ति पर एकाग्रता का अभ्यास करता है, तब अवचेतन मन (Sub-conscious mind)[a] की सृजनात्मक शक्ति क्रियाशील हो उठती है। ***इन इच्छा तरंगों को 'अवचेतन' मन ग्रहण करता है, जो प्रोटॉन (Proton) कणों से निर्मित होने के कारण सृजनात्मक तथा चेतन है। ग्रहण किए गये संदेशों (Auto Suggestions) के आधार पर यह चेतन शक्ति उन इच्छाओं की पूर्ति कर देता है।*** वस्तुतः सगुण साकार उपासना पद्धति के आविष्कार से ***'बहुदेववाद'*** को भारी सम्बल मिला है। ***यह मुद्दा भी धार्मिक उन्माद का कारण बना हुआ है, इसको भी सही सोच के प्रचार-प्रसार से ही दूर किया जा सकता है।***

**बहु देववाद का चित्रांकन**

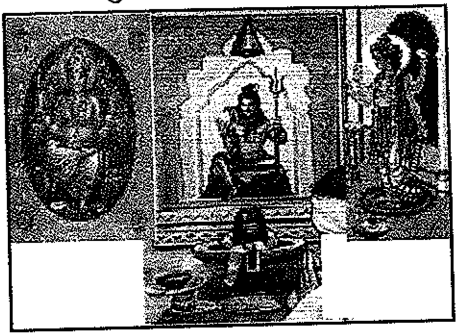

**चित्र 1.11**

**7. उपदेश देने की उन्नत विधि :-** वैदिक ऋषियों ने उपदेश देने की बहुत ही उन्नत विधि का प्रयोग किया है, जिसमें उन्होंने प्रकृति में उपलब्ध निराकार शक्तियों का मूर्तिकरण किया और फिर उन पर कथाएँ आरोपित करके देवताओं द्वारा ऋषियों को उपदेश, वार्तालाप के माध्यम से दिया गया। ***इस विधि से सुनने वाले के अहंकार को किसी प्रकार की ठेस नहीं लगती और शिष्यों को वह उपदेश सहज ढंग से समझ में भी आ जाता है। जैसे - शंकर-पार्वती सम्वाद, ब्रह्मा-नारद सम्वाद, कृष्ण-अर्जुन सम्वाद, सूत-शौनक सम्वाद, गरुड़-काकभुशुंडि सम्वाद तथा श्री शुकदेव जी और राजा परीक्षित सम्वाद इत्यादि। वार्तालाप में कथाओं (कहानियों) का प्रयोग प्रचुरता से किया गया, जिसके कारण पुराणों का साहित्य अत्यन्त रोचक बन गया। यही विधि उपनिषदों, गीता आदि में भी प्रयोग की गयी। इन***

---

a. इस सम्बन्ध में समुचित जानकारी चतुर्थ सत्र के अनुच्छेद 2(1) के शीर्षक ''अव्यक्त से व्यक्त बनाने की वैज्ञानिक विधि के अन्तर्गत दी गयी है।

***प्रतीकों तथा कथाओं का सम्मिश्रण भागवत पुराण में बहुत सुन्दर ढंग से किया गया है, अतएव भागवत पुराण इस प्रकार के साहित्य में सर्वश्रेष्ठ गिना जाता है, जिसे प्रतिदिन लाखों लोग सुनने जाते हैं।***

**8.(i) आधुनिक विज्ञान एवम् भारतीय आत्म विज्ञान :-** अनेक बन्धु ***'आधुनिक विज्ञान'*** को लेकर अति से ज्यादा उत्साहित दिखलायी पड़ते हैं, जबकि अनेक भारतीय यह सोचते हैं, कि भारतीय ***'आत्म-विज्ञान'*** की खोजों की तुलना में ***'आधुनिक विज्ञान'*** अभी बहुत पीछे है। यह सत्य है, कि आधुनिक विज्ञान अभी तक आत्मा-परमात्मा की सत्ता तक नहीं पहुँच पाया है, परन्तु विज्ञान का ध्येय भी सम्पूर्ण सत्य की खोज करना ही है। कई वैज्ञानिक यह सोचने लगे हैं, कि परमात्मा भी पदार्थ जगत के ***'अणु', 'परमाणु'*** अथवा ***'कण'*** जैसा ही अनन्त शक्तिशाली कुछ होगा, अतः वे उसे ईश्वरीय-कण (God particle) के नाम से खोजने का प्रयास कर रहे हैं।

**उपदेश देने की उन्नत विधि**

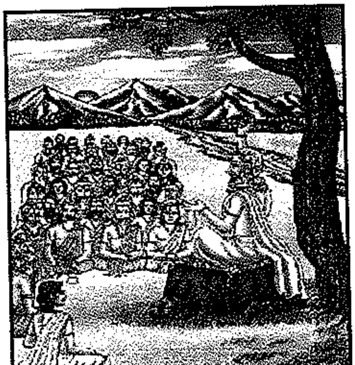

**चित्र 1.12**

आधुनिक विज्ञान ने अपनी खोज, पदार्थ के सूक्ष्म अंश ***'अणु'*** (Molecule) से प्रारम्भ की थी और अब वह विराट की ओर निरन्तर अग्रसर हो रहा है। आधुनिक विज्ञान, पूरी निष्ठा और लगन से सृष्टि के आदि के अध्ययन में रत है। जो-जो खोजें विज्ञान ने अब तक की हैं, उससे भारतीय खोजों की पुष्टि ही हुई है। मेरे विचार से कुछ बिन्दुओं को छोड़कर, जिसकी चर्चा इस पुस्तक के अगले सत्रों में यथास्थान की जाएगी, कहीं भी कोई खण्डन हुआ ही नहीं है। अन्तर है, तो मात्र भाषा का है। भारतीयों ने अपनी खोजों को प्रतीकों की भाषा में तथा काव्यात्मक साहित्यिक कथाओं में पिरोकर सुरुचिपूर्ण ढंग से और अति सभ्य ढंग से लिखा है, जबकि आधुनिक विज्ञान की भाषा-शैली, विनम्रता और भावनात्मकता से बहुत दूर है। ***भारतीय शोध-कर्त्ताओं द्वारा प्रतीकों पर आधारित काव्यात्मक शैली का यदि खुलासा (Decode) किया जाये, तो आधुनिक विज्ञान की भाषा स्पष्ट दिखलायी पड़ने लगती है, तब पाठक को अपने भावना-प्रधान पूर्व संस्कारों के विपरीत होने के कारण बहुत कुछ अरुचिकर सा लगता है।*** अगले सत्रों की चर्चा में विशेषकर ***चौथे एवम् पाँचवें सत्रों*** में यह अटपटापन अधिक साफ लगने लगेगा। *सुविज्ञ पाठकगण कृपया इस विचित्र स्थिति से विचलित न हों।*

एक बात और, कि आधुनिक विज्ञान की खोजें भौतिक यन्त्रों एवम् मशीनों जैसे - अंतरिक्ष की यात्रा करने वाले यान तथा बड़े-बड़े दूरदर्शी यंत्रों (radio telescopes) आदि पर आधारित हैं, जबकि भारतीयों की खोज का माध्यम मानव मन था, जिसकी गति अनन्त है और वह क्षण भर में सृष्टि के किसी भी कोने तक पहुँच सकता है। ***'समाधि'*** में पहुँच कर ऋषियों ने पूरी सृष्टि के सभी रहस्यों का पता लगा लिया था और उन खोजों पर भरोसा भी किया जा

सकता है, क्योंकि आधुनिक खोजों द्वारा भारतीय ऋषियों की खोजों की लगातार पुष्टि होती जा रही है। ***आधुनिक विज्ञान पर यह आरोप लगाया जाता है, कि वह बारम्बार अपने निर्णय बदलता है, परन्तु यह तो विकास की ओर बढ़ने की आवश्यक शर्त है, क्योंकि विज्ञान ने आज तक यह कभी नहीं कहा, कि उसने जो कुछ खोज लिया है, वह अन्तिम सत्य है। अतएव वैज्ञानिक जब भी मानव मन की शक्ति को समझ लेंगे, वे भी उसका उपयोग करना सीख जायेंगे और तब आत्मा-परमात्मा के विज्ञान को भी समझ लेंगे।***

मान लीजिए, एक व्यक्ति पृथ्वी के तल पर पश्चिम दिशा की ओर की यात्रा करता है तथा दूसरा व्यक्ति ठीक उसी बिन्दु से पूर्व दिशा की ओर उसी रेखा में बढ़ता जाता है, तो निश्चित रूप से दोनों व्यक्ति एक-न-एक दिन एक ही बिन्दु पर आकर मिलेंगे। इसी प्रकार आधुनिक विज्ञान के निष्कर्ष और भारतीय आत्म-विज्ञानियों के निष्कर्ष एक न एक दिन अवश्य ही समान होंगे, ***बात केवल उनको सम्पूर्णता से देख सकने की क्षमता भर की है। अगले सत्रों में इस विचार की क्रमशः पुष्टि होती जायेगी।***

*8(ii)* **सम्पूर्णता की सोच** :- वेदों का ज्ञान अपने आप में पूरी तरह से एक समग्रता की सोच है। ऋषियों ने जीवन को सर्वत्र समग्रता से देखा, परखा, समझा और उस ज्ञान को हमें विरासत में दे भी गये। मान लीजिए, किसी देवता का कोई चित्र है और उसे टुकड़े-टुकड़े कर दिया जाये। किसी के हाथ में देवता का कान आ जाये, अन्य के हाथ में आँखें, तीसरे के हाथ में नाक, तो क्या कोई भी व्यक्ति उस देवता को पहचान सकेगा ? ***इसी प्रकार वेदों की समग्रता की सोच आम आदमी की बुद्धि कभी भी पूर्ण रूप से समझ ही नहीं पायी। यही कारण है, कि समय-समय पर वेदों के निर्णय को चुनौती दी जाती रही है।*** गुरुओं का प्रयास भी समयानुकूल आम आदमी के स्तर पर उतर कर समझाने का रहा है, ***इसीलिए बारम्बार भ्रान्तियों का जन्म होता रहा और अनेक पन्थ तथा सम्प्रदायों का विवाद खड़ा होता रहा।***

*8(iii)* **भ्रान्तियों का उदय एवम् समाधान** :- भ्रान्तियों और विवादों से भरा भारत में एक काल ऐसा भी आया, जब विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग मतों का प्रतिपादन करके पूरे देश में एक जोरदार विवाद खड़ा कर दिया। यह काल था, कि जब 'चार्वाक मुनि' ने अपने मत का यह कहकर प्रचार किया, कि सम्पूर्ण रूप से मानव देह ही सब कुछ है। उन्होंने बतलाया, कि इस जीवन के पश्चात् कोई पारलौकिक जीवन है ही नहीं। फिर दूसरे प्रचारक आए। उन्होंने भी अपने-अपने मत रखे, जैसे - गौतम ने ***'न्याय दर्शन'***, कणाद ने ***'वैशेषिक दर्शन'***, पतंजलि ने ***'योग दर्शन'***, जैमिनी ने ***'पूर्व मीमांसा'***, कपिल ने ***'सांख्य'*** और अन्त में महर्षि वेदव्यास ने एक समन्वित दर्शन अर्थात् ***'वेदान्तदर्शन'*** का प्रचार किया। वेदान्त दर्शन के पूर्व के प्रचारकों द्वारा समाज में इतना अधिक ***'तर्क-वितर्क'*** का वातावरण बन गया था, कि जनता घबरा गई, कि सही क्या है और ग़लत क्या है, अर्थात् जनता को लगा कि ***'तारकासुर'*** (तर्क का असुर) समाज को प्रताड़ित कर रहा है और उसको मारने के लिए भगवान शंकर के पुत्र, देवताओं के सेनापति श्री स्वामि-कार्तिकेय जी को जन्म लेना पड़ेगा अर्थात् लगता है, कि तत्कालीन विद्वानों ने यह सोचकर, कि भविष्य में इस समस्या का कोई न कोई समाधान निकल ही आएगा। सभी दर्शनों को मान्यता प्रदान कर दी। यही कारण है, कि संस्कृत साहित्य में

सभी दर्शन ग्रंथों को आज भी सम्माननीय स्थान प्राप्त है तथा महाविद्यालयों में इन सभी दर्शनों को पढ़ाया जाता है। वस्तुतः इन सभी दर्शन शास्त्रियों ने अपने-अपने ढंग से प्राकृतिक सिद्धान्तों की व्याख्या करने का ही प्रयास किया है, परन्तु उनमें पूर्णता की सोच के अभाव के कारण भ्रान्तियों का उदय हुआ। अन्ततोगत्वा महर्षि वेदव्यास ने छहों दर्शनों का भगवद्गीता में समन्वित लेखन करके इस विवाद को शान्त किया अर्थात् इस प्रकार भगवद्गीता रूपी छह मुख वाले स्वामि- ***'कार्तिकेय'*** के द्वारा 'तारकासुर' का विनाश हो गया।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने इसी सम्बन्ध में 'रामचरित मानस' में लिखा है -

**चौ०:- *तब जनमेउ षटबदन कुमारा। तारकु असुर समर जेहिं मारा* [a] ।।**

आदरणीय पाठकगण ! यदि प्रतीकों की इस भाषा पर गहरायी से चिन्तन करेंगे, तो बात पूरी तरह से साफ हो जाएगी।

इस घटना के पश्चात् भी प्रचारकों ने अनेक वादों, (मार्गों) जैसे - द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, अचिन्त्य भेदाभेद आदि का प्रतिपादन किया, जिसका अन्तिम समन्वय भगवान शंकर के अवतार आदि-शंकराचार्य ने ***'अद्वैतवाद'*** के रूप में किया।

***क्योंकि सत्य एक है, अतएव मूर्तिकरण से उत्पन्न भ्रान्तियों एवम् अन्य सभी विवादों को सुलझाने में विज्ञान सक्षम है। यह कार्य आज हमारे नौनिहाल बच्चों को करना है, जो वे कर दिखायेंगे ऐसी आशा है !***

**9(i) वैदिक धर्म का क्रमिक विस्तार एवम् भावी पीढ़ी**—वैदिक धर्म में सदैव से लचीलेपन का गुण रहा है, अतएव इस प्राकृतिक धर्म में युगानुकूल परिवर्तन किए जाते रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है, कि सतयुग में शुद्ध निराकार (अद्वैत) उपासना पद्धति का प्रचलन था, जिसमें उपासना के लिए केवल चार ही मंत्र 'तत्त्वमसि', 'अयम् आत्मा ब्रह्म', 'सोऽहम्' तथा 'अहम् ब्रह्मास्मि' थे। इस पद्धति के नियम भी कठोर थे, जिन्हें अधिकांश समाज पालन नहीं कर पाता था। ऋषि विश्वामित्र ने जनता की इस कठिनाई को समझा तथा 'गायत्री मंत्र'[b] की खोज के द्वारा सगुण-साकार (द्वैत) उपासना पद्धति का प्रतिपादन किया। परिणामस्वरूप परमात्मा तथा अन्यान्य परमात्म-शक्तियों का मूर्तिकरण हुआ। यह पद्धति सरल होने के कारण अधिक जनप्रिय भी हुई। यद्यपि तत्कालीन समाज ने इसका पुरजोर विरोध भी किया, परन्तु अन्त में विजय ऋषि विश्वामित्र की ही हुई।

इसी प्रकार द्वापर तक जितनी भी धर्म सम्बन्धी खोजें ऋषियों एवम् महर्षियों द्वारा की गयीं, उस ज्ञान को पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप से सुरक्षित रखने की परम्परा थी। ऐसा भी माना जा सकता है, कि संस्कार रूप में प्राप्त सतयुग काल की राजा हरिश्चंद्र जैसी कठोर सत्य-धारणा तथा त्रेता युग की राम जैसी तपस्वी-परम्परा भी प्रचलित अवश्य रही होगी। वेदव्यास ने मौखिक (श्रुत) ज्ञान को एकत्रित किया तथा उसे चार खण्डों ऋक्, यजु, साम तथा अथर्व वेदों के रूप

---

**a** *श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड दो. 102-103 के मध्य*

**b** इस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी हेतु "मानव धर्म का आधार - गायत्री मंत्र" पुस्तक के भाग-3 में संलग्न है।

में संकलित किया। इन वेदों में निहित ज्ञान को युगानुकूल सरलीकरण करने के लिए व्यास जी ने सर्व प्रथम प्रतीकों की भाषा में महाभारत[a] लिखी और युग धर्मानुसार गीता के माध्यम से निष्काम कर्म-योग की शिक्षा पर बल दिया। तत्पश्चात् मध्यम बौद्धिक वर्ग के लिए अठारह पुराणों की रचना भी प्रतीकों की भाषा में की। अन्त में निम्नश्रेणी के खेतिहर मजदूर तक को ईश्वर से जोड़ने हेतु प्रेम एवम् भक्ति से भरपूर श्रीमद्भागवत[a] महापुराण की रचना की, जिससे भावना में डूबकर निम्नतम श्रेणी का साधक भी क्रमशः द्वैत से अद्वैत तक की सीढ़ियाँ चढ़ सके। क्योंकि व्यास जी कुशल मनोवैज्ञानिक होने के साथ-साथ भविष्य-द्रष्टा भी थे, अतएव भावी पीढ़ी की अवश्यकताओं, योग्यताओं और भविष्य में होने वाली घटनाओं को ध्यान में रखते हुए कलियुग के युग धर्म 'दान' के साथ भक्तिमार्ग पर विशेष बल दिया। बारह सौ वर्षों के आतंक, भय एवम् नर-संहार की अवधि में अनेक भक्ति-मार्गी संत हुए, जिन्होंने धर्म के पतनोन्मुख काल में ईश्वर-भक्ति के सहारे वैदिक समाज का आत्मबल बनाए रखा और पौराणिक कथाओं के लोक-भावन साहित्य के कारण वैदिक धर्म का विनाश होते-होते बच गया। महर्षि वेदव्यास ने अपने से पूर्ववर्ती समय की परम्पराओं को त्याग कर समयानुकूल क्रान्तिकारी साहित्य का लेखन किया। स्वभावतः तब तत्कालीन समाज ने कितना विरोध न किया होगा, क्योंकि जब भी कोई परम्परा टूटती है, समाज में विरोधी स्वर तीव्र से तीव्रतर हो उठते हैं। चार लाख[b] से अधिक श्लोकों पर आधारित समस्त पुराणों की रचना किसी एक व्यक्ति द्वारा सम्भव नहीं लगती। गुरु-शिष्य परम्परा के माध्यम से पुराणों द्वारा वेदों की सरलीकरण प्रक्रिया कई व्यासों द्वारा पूर्ण की गयी लगती है। अर्थात् यह कार्य सामूहिक प्रयास से पूर्ण किया गया। कदाचित् इसीलिए यह कहा जाता है कि व्यास जी लिखवाते थे तथा श्री गणेश जी लिखते थे। समय की माँग के अनुरूप ***आज से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व गुरु गोविन्द सिंह जी ने वैदिक साहित्य का सहज काव्यात्मक रूप से संक्षिप्तीकरण किया। इस प्रकार गुरु ग्रंथ साहब का लेखन करके उन्होंने भय एवम् आतंक के काल में प्राकृतिक धर्म की रक्षा की।***

***इसी प्रकार युगानुकूल परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आज के विद्वत- समाज द्वारा वैदिक ग्रथों के आधार पर आधुनिक विज्ञान की भाषा में पुनर्लेखन किया जाना श्रेयस्कर होगा।*** कम्प्यूटर, रोबोट, टेलिस्कोप से सज्जित आधुनिक विज्ञान की पीढ़ी इस प्रकार के लेखन को सहर्ष स्वीकार करेगी और तभी कल्कि अवतार की पौराणिक कथा सत्य और सार्थक भी होगी।

---

a संदर्भ :-श्रीमद्भागवत महापुराण प्रथम खण्ड पन्द्रहवाँ संस्करण गीता प्रेस गोरखपुर वि. सं. 2047 व्यास उवाच :—महाभारत (इतिहास) रचना के बहाने मैंने वेद के अर्थ को खोल दिया है। (पृष्ठ 62) नारद उवाच :—व्यास जी आप सत्यपरायण एवम् दृढ़व्रत हैं। इसलिए अब आप सम्पूर्ण जीवों को बन्धन मुक्त करने हेतु समाधि द्वारा अचिन्त्य शक्ति भगवान की लीलाओं का स्मरण कीजिए। जो लोग पारमार्थिक बुद्धि से रहित हैं और गुणों के द्वारा नचाए जा रहे हैं, उनके कल्याण के लिए आप भगवान की लीलाओं का सर्व साधारण के हित की दृष्टि से वर्णन एवम् कीर्तन कीजिए। (पृष्ठ 64-65)

b संदर्भ :- श्रीमद् भागवत महापुराण द्वितीय खण्ड, पन्द्रहवाँ संस्करण गीता प्रेस गोरखपुर, वि.सं. 2047, (पृष्ठ 974)

**9(ii) कल्कि अवतार की कथा :-** पुराणों में इस सम्बन्ध में कथन आया है, कि ***'कलियुग'*** के अन्त में भगवान अवतार लेकर, घोड़े पर चढ़कर आयेंगे और तलवार से दुष्टों का नाश करेंगे। एटमी विश्व में कोई भी एक व्यक्ति, तलवार से कुछ भी विनाश नहीं कर सकता। प्रतीकों की इस पौराणिक आख्यायिका को रूपान्तरित (Decode) करना होगा, तभी हम इसका ठीक अर्थ समझ सकेंगे। ***घोड़ा - विचारों का प्रतीक है, जैसे घोड़ा तेज भागता है, उसी प्रकार विचार तेज भागते हैं और तलवार - तेज़ धार (Sharp) का प्रतीक है, जैसे तलवार की धार तेज होती है, उसी प्रकार विज्ञान के विचारों की धार अकाट्य होती है, अर्थात् विज्ञान-सम्मत विचारों के प्रचार-प्रसार से ही विवेकहीन श्रद्धा का नाश होगा और विश्व में एक विज्ञान-सम्मत धर्म की स्थापना होगी।***

**9(iii) विश्व मानव :-** विश्व मानव एक है, काला हो अथवा गोरा, छोटी आँख वाला हो अथवा बड़ी आँख वाला, योरुपीय हो अथवा अफ्रीकी, भारतीय हो अथवा चीनी। पूरे विश्व में पहले भी एक ही धर्म था, जो प्रकृति के उपरोक्त सिद्धान्तों पर आधारित था। ***आज भी उसी धर्म को विज्ञान के माध्यम से पुनः स्थापित करने की आवश्यकता है। अतएव हमारा लक्ष्य है :-***

***(a)*** इस सत्र के अनुच्छेद-पाँच में उल्लिखित प्रकृति के शाश्वत सिद्धान्तों की विज्ञान-सम्मत व्याख्या का प्रचार-प्रसार हो तथा इस महान् कार्य को सरकार एवम् प्रचार-प्रसार संसाधन (मीडिया) प्रोत्साहन दें।

***(b)*** स्कूलों में बच्चों को इन प्राकृतिक सिद्धान्तों की आवश्यक विषय के रूप में शिक्षा दी जाये।

***(c)*** विश्व का वैज्ञानिक समाज भी प्राकृतिक सिद्धान्तों पर अन्वेषण करे तथा अपनी स्वीकृति प्रदान करे। इस प्रकार विश्व शान्ति की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हो। अस्तु !

हरि: ॐ तत् सत् !